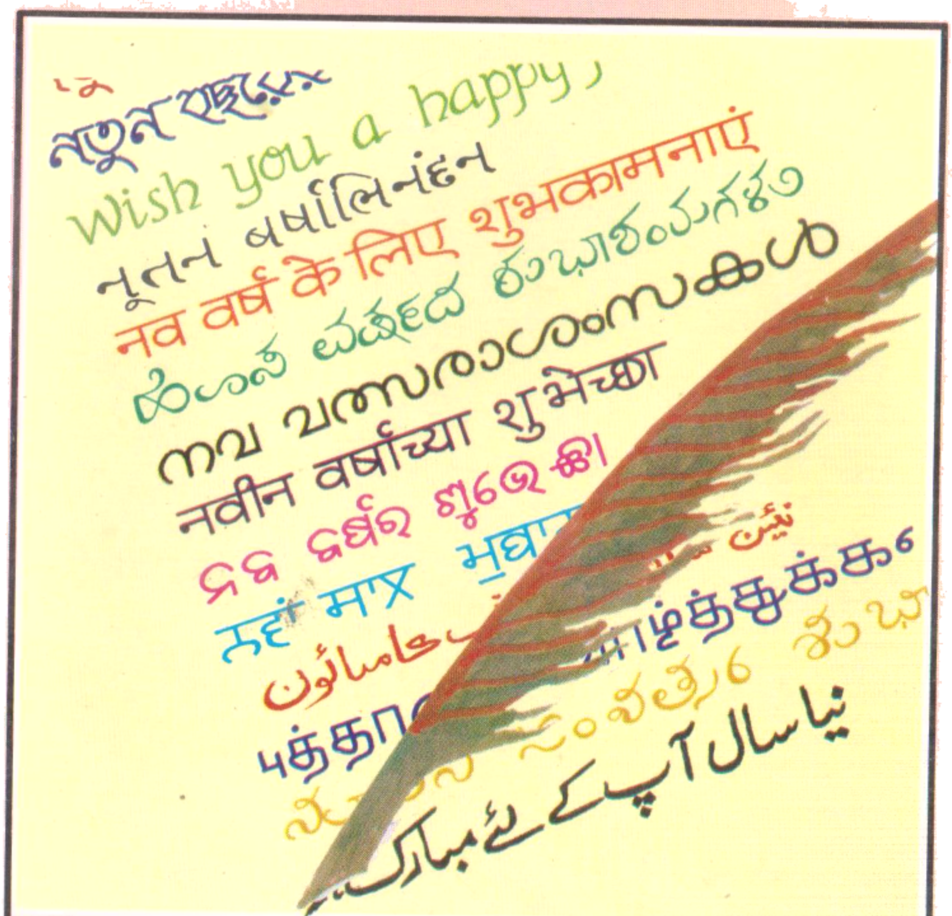
स्वदेश-परिचय

भारत के साहित्यों की कहानी



डॉ. भगवतशरण उपाध्याय

स्वदेश-परिचय : ४

भारत के साहित्यों की कहानी



डॉ. भगवतशरण उपाध्याय

राजपाल

भारतीय साहित्य

भारत में अनेक लोग हैं जो अनेक भाषाएँ बोलते हैं। प्रधान भाषाएँ तो दस-बारह ही हैं, पर बोलियाँ सैकड़ों हैं। यहाँ हम केवल तेरह भाषाओं के साहित्य की कहानी कहेंगे। इनमें से नौ उत्तर-पूर्व की भाषाएँ हिन्दी, बंगाली, गुजराती, मराठी, कश्मीरी, पंजाबी, उड़िया, असमी और उर्दू हैं और दक्षिण की चार तमिल, तेलुगू, कन्नड़ और मलयालम हैं। दक्षिण की भाषाएँ मूल रूप में द्राविड़ से निकली हैं पर उनमें संस्कृत के शब्द बहुत मिले हुए हैं। उत्तर की भाषाएँ संस्कृत और पुरानी जन बोलियों यानी प्राकृतों से निकली हैं और एक-दूसरे के बहुत समीप हैं। इन तेरहों भाषाओं में सैकड़ों वर्षों से साहित्य लिखा जाता रहा है। एक से एक विद्वान, एक से एक गायक उनमें पैदा हुए और उन्होंने बोली को साहित्य के योग्य बनाया। आज हम उनके साहित्य को बार-बार मथकर सुख और आनन्द का लाभ करते हैं; आज सैकड़ों साल बाद भी उनके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं।

1. हिन्दी

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा और राजभाषा है। उसका विस्तार बड़ा है। करीब चालीस करोड़ आदमी उसे इस देश में बोलते हैं। पंजाब, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश तथा बुंदेलखंड का एक बड़ा भाग और बिहार के रहने वाले हिन्दी या उससे मिलती जन-बोलियाँ बोलते हैं।

यह भूखण्ड इतना बड़ा है कि इसमें एक भाषा का निभ सकना कठिन था, इसलिए थोड़ी-थोड़ी दूरी पर बोली बदलती गई और इस प्रकार अनेक बोलियाँ बोली जाने लगीं। इनमें से प्रधान बोलियों में साहित्य भी काफी तैयार हुए जिनको हिन्दी ने अपनी छत्रछाया में लिया और जो हिन्दी के ही अंग-प्रत्यंग बन गए।

इस प्रकार जिन बोलियों में अच्छा साहित्य प्रस्तुत हुआ, उनमें प्रधान हैं–राजस्थानी, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी और मैथिली। जिसे आज हम खड़ी बोली कहते हैं, वह भी पहले की दिल्ली के आसपास की जन-बोली ही है। पर जैसे किसी ज़माने में ब्रजभाषा का बंगाल तक इतना बोलबाला था कि रवि बाबू सहित अनेक बंगाली कवियों ने उसमें कविता की, उसी प्रकार आज दिल्लीवर्ती उस खड़ी बोली का भी बोलबाला है और उसी की सभी हिन्दी-बोलियाँ और उनके साहित्य उसी के अन्तर्गत माने जाते हैं।

इन बोलियों का आरम्भ प्राचीन जन-बोलियों या प्राकृतों से हुआ। प्राकृत का मतलब है वह बोली, जो सहज रूप से अनायास बोली जाती हो। उन्हीं प्राकृतों ने समय आने पर साहित्यिक रूप धारण किया। उन्हीं का एक रूप अपभ्रंश कहलाया। जब साहित्य का रूप धारण की हुई

प्राकृतों में जन-बोली के शब्द मिलाकर लिखते थे, तब उसे अपभ्रंश कहते थे। यही अपभ्रंश कालक्रम से प्राकृतों की ही भाँति साहित्य की भाषा बन गई। हिन्दी का उदय बस वहीं से हुआ।

अपभ्रंश में लिखी अनेक कवियों की रचनाओं में ऐसी पंक्तियाँ हैं जो हिन्दी में दोहे कहलाईं। इस रूप में हिन्दी का आरम्भ शायद दसवीं सदी से पर्याप्त पहले हो गया था। हिन्दी के इतिहास को हम साधारण तौर पर तीन भागों में बाँट सकते हैं—प्राचीन काल, मध्य काल और वर्तमान काल। प्राचीन काल आठवीं सदी से तेरहवीं सदी तक है, मध्य काल उसके बाद उन्नीसवीं सदी तक, वर्तमान काल उसके बाद से आज तक।

1. प्राचीन काल

प्राचीन काल प्रायः ईसा की आठवीं सदी से भी पहले से आरम्भ होता है, जब वज्रयानी सिद्धों ने अपना ज्ञान पदों और दोहों में लिखना शुरू किया। कन्हपा, सरहपा आदि उसी परम्परा के सिद्ध हैं। दसवीं–ग्यारहवीं सदी में नाथों का सम्प्रदाय खड़ा हुआ, जिसमें सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए गुरु गोरखनाथ। सिद्धों की भाषा अधिकतर जटिल है और हास्य-प्रधान है।

प्राचीन काल का एक युग 'वीर–गाथा' काल भी कहलाता है। यह युग ग्यारहवीं–बारहवीं सदी का है। इसी काल में प्रसिद्ध 'पृथ्वीराज रासो' लिखा गया। उससे भी पहले पृथ्वीराज के दादा बीसलदेव का चरित्र उसी वीर–गाथा-शैली में नरपति नाल्ह ने गाया था। बीसलदेव अजमेर का चौहान राजा था। पृथ्वीराज दिल्ली और अजमेर का राजा था और उसके दरबारी कवि चन्दवरदायी और उसके बेटे जल्हण ने 'पृथ्वीराज रासो' लिखा। परन्तु जो रासो आज हमें मिलता है, वह उतना पुराना नहीं है और आज से केवल चार सौ वर्ष प्राचीन जान पड़ता है। उस काल का सबसे प्रबल राज दरबार कन्नौज के गहड़वाल राजा जयचंद का था। उसके दरबार में मधुहर और भट्ट केदार भाषा के कवि

थे परन्तु उनका लिखा आज कुछ भी प्राप्त नहीं है। चन्देल राजाओं के महोबा के दरबार में जगनिक नाम के कवि के होने की बात कही जाती है। उसने भी शायद 'आल्हाखण्ड' के नाम से जन-बोली में उस काल की वीर गाथा गाई। पर आज जो 'आल्हाखण्ड' मिलता है वह तब का नहीं माना जा सकता। इस वीरगाथा साहित्य को, जो अधिकतर वीरों के यश को अमर करने के लिए लिखा गया था, 'चारण काव्य' भी कहते हैं क्योंकि उसको दरबारों में या लड़ाई के मैदान में या लोगों की बैठक में चारण या भाँड लोग ही गाया करते थे।

2. मध्य काल

मध्य काल का आरम्भ भक्ति-सम्प्रदाय के प्रचार के साथ हुआ। दक्षिण में रामानुज, निम्बार्क आदि ने जिस भक्ति-परम्परा को साधा, वह उत्तर में भी रामानन्द और चैतन्य महाप्रभु के प्रचार से फैली। बंगाल में जयदेव ने राधाकृष्ण का रास संस्कृत काव्य 'गीत-गोविन्द' में गाया। मैथिल-कोकिल विद्यापति ने अपनी बोली में उन्हीं का रास मुखरित किया।

मध्य काल की खड़ी बोली का आरम्भ मलिक ख़ुसरो ने किया। उसकी पहेलियाँ बड़ी साफ-सुथरी हैं और उनमें उसने फारसी और हिन्दी-मिश्रित भाषा का सुन्दर प्रयोग किया है। उसने भारतीय संगीत का भी बड़ा विकास किया। कहते हैं कि सितार और तबला उसी के बनाए हुए हैं।

मीरा ने भी अपने पदों में भक्ति की अद्‌भुत धारा बहाई। राजा की लड़की थी मीरा, पर कुल की मर्यादा से अधिक उसने श्रीकृष्ण-प्रेम को महत्व दिया। उसके पद ब्रजभाषा, राजस्थानी और गुजराती तीनों भाषाओं में अपनाए गए। सूरदास भी उसी की भक्त-परम्परा में हुए। उनके पद मिठास और कविता की सुगढ़ता में अपना सानी नहीं रखते। ब्रजभाषा में उनके पदों से बढ़कर दूसरा कुछ नहीं। कृष्ण के बालपन का जो रूप सूर ने खींचा है वह अन्यत्र नहीं मिलता। सूरदास के निर्माण

में उनके गुरु बल्लभ का बहुत योगदान है। रामानन्दी परम्परा के सबसे महान कवि गोस्वामी तुलसीदास हुए। समाज को शास्त्र की मर्यादा से गिराने वाले औघड़ों और कापालिकों के जवाब में उन्होंने अपना महाकाव्य 'रामचरितमानस' लिखा, जिसकी गिनती संसार के सर्वोत्तम काव्यों में की जाती है। समाज में एक-दूसरे के प्रति कर्त्तव्य, पारिवारिक सम्बन्ध आदि उसमें सभी कुछ उतर आया; और जन-जन की बोली में जन-जन को छूकर उस काव्य ने सुरसरि की धारा की भाँति सबको पवित्र कर दिया।

भक्तों की एक सन्त-परम्परा भी थी जो पहले से चली आती प्राचीन सिद्ध गुरुओं से भी कुछ अंश में जुड़ी थी। उस पर सूफी धर्म का प्रभाव पड़ा, जिसने प्रेम और एकता का उपदेश किया। कबीर उसी परम्परा के सन्त कवि थे, जिन्होंने हिन्दू-मुसलमान, मन्दिर-मस्जिद आदि की बुराइयों को बड़े साहस के साथ ललकारा। जायसी ने भी 'पद्मावत' उसी परम्परा में लिखा, जिसमें सूफी और उपनिषद् के विचारों को पद्मिनी के रूपक में रखा गया। दादू, मलूकदास आदि भी सन्त-कवि ही थे। इनके प्रचार से समाज के भेद-भाव में कमी आई।

मध्य काल का पिछला युग रीति-काल या शृंगार-काल कहलाता है। अब अधिकतर कवि जयपुर, ओड़छा आदि के दरबारों में रहने लगे थे। इस काल नायिकाओं के नखशिख-सौन्दर्य का वर्णन, नायिका-भेद और अलंकार कवियों के आकर्षण बने और उन्होंने कहीं व्याख्या के रूप में, कहीं दृष्टान्त के रूप में और कहीं मूल रूप में उस सम्बन्ध में कविता रची। ओड़छा के कवि केशवदास ने इसी रीति-परम्परा में अपनी 'कविप्रिया' लिखी। जयपुर के कवि बिहारी ने तभी कुछ ही काल बाद अपनी 'सतसई' लिखी। देव, सेनापति, घनानन्द और पद्माकर भी इसी परम्परा के कवि थे और इसी परम्परा के मतिराम और भूषण भी थे। पर भूषण ने वीर-रस में हिन्दू राष्ट्रीयता का स्वर भरा।

3. वर्तमान काल

हिन्दी साहित्य का वर्तमान काल उन्नीसवीं सदी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से शुरू होता है। अब तक का साहित्य अधिकतर पद्य-साहित्य था, पर अब से गद्य-साहित्य भी शुरू हुआ। इस तरह भारतेन्दु वर्तमान हिन्दी या खड़ी बोली के जनक माने जाते हैं। भारतेन्दु स्वयं कवि और नाटककार थे। 'भारत-दुर्दशा' आदि अनेक नाटक लिखकर बड़े साहस के साथ उन्होंने साहित्य में भारतीय राष्ट्रीयता को प्रवेश दिलाया। उनके साथ अनेक दूसरे साहित्यकार भी थे, जिन्होंने गद्य-पद्य दोनों में लिखा।

बीसवीं सदी के आरम्भ से ही राष्ट्रीयता का नारा बुलन्द हो चला था और राष्ट्रीय कांग्रेस के आन्दोलन ने उसमें अपना योगदान किया। 'हरिऔध' ने संस्कृत छन्दों का अपने महाकाव्य 'प्रिय-प्रवास' में प्रयोग किया। मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्रीयता की आवाज़ अपनी 'भारत-भारती' में ऊँची की और श्रीधर पाठक ने कविता को एक नई दिशा दी। वह युग 'द्विवेदी-युग' कहलाया क्योंकि महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन द्वारा अनेक नए कवियों को खोज निकाला और आलोचना और निबन्ध के मानदंड निर्धारित किये। परन्तु सुन्दर पुष्ट गद्य का रूप रामचन्द्र शुक्ल ने निखारकर रखा। निबन्ध और आलोचना शिखर स्पर्श करने लगे।

अगला कदम साहित्य में छायावादी कवियों ने उठाया, जिसके चार प्रबल स्तम्भ–जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा हुए। इस शैली में कवि की अनुभूति अधिक बोलती थी और उस पर बंगला और अंग्रेज़ी के रोमाण्टिक कवियों का भी प्रभाव था। प्रकृति का वर्णन, नए छन्दों का प्रयोग, मधुर सुन्दर परन्तु रहस्यमयी वाणी का भी उपयोग उसमें खूब हुआ। हिन्दी काव्य का वह शान्त पर सुमधुर युग था।

प्रबल वेग से प्रगतिशीलता की धारा नरेन्द्र शर्मा और शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने बहाई। इसी बीच हरिवंशराय 'बच्चन' की रूमानी कविता भी परवान चढ़ी, और रामधारीसिंह 'दिनकर' की ओजस्वी पद्य-रचना

भी। इस बीच नाटक और निबन्ध, कहानी और उपन्यास भी खूब लिखे गये। कहानी और उपन्यास का सेहरा प्रेमचन्द के सिर बँधा, जिन्होंने देश की चिन्ता और गाँव के जीवन को एक साथ साहित्य में रखा। आलोचना-साहित्य भी बड़ी मात्रा में सामने आया।

सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के साथ हिन्दी का एक बिलकुल नवीन युग आरंभ हुआ जिसमें कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक सभी की दिशा बिलकुल बदल गई। इस परंपरा में जैनेन्द्र कुमार, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कृष्णा सोबती इत्यादि अनेक रचनाकार हुए जिन्होंने अपनी रचनाओं से साहित्य को खूब समृद्ध किया।

इस युग में और भी कई आलेखनीय साहित्यकार हुए जिनमें कई दिवंगत भी हो गए और कई जीवित हैं। यहाँ कुछ ऐसे ही रचनाकारों का उल्लेख किया जा रहा है।

वृन्दावनलाल वर्मा–ऐतिहासिक उपन्यासों का स्वर्णयुग यहीं से आरम्भ होता है। इनके समय में अतीत के झरोखे से वर्तमान के दिग्दर्शन की प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ। उनकी प्रसिद्ध कृतियों में 'गढ़ कुंडार' (1920), 'विराटा की पद्मिनी' (1930), 'झांसी की रानी' (1946), 'मृगनयनी' (1950) आदि प्रसिद्ध हैं। ये दिवंगत हो चुके हैं।

भगवती चरण वर्मा–उनके छोटे पर अत्यन्त लोकप्रिय उपन्यास 'चित्रलेखा' (1935) की माँग आज भी बनी हुई है। उसका कथानक चन्द्रगुप्त, चित्रलेखा और एक योगी के इर्द-गिर्द घूमता है। पाप-पुण्य की परिभाषा इस पुस्तक का लक्ष्य है। भाषा की मधुरता इस पुस्तक की विशिष्टता है। इस पर अब तक कम-से-कम दो बार फिल्में बन चुकी हैं। भगवती चरण वर्मा की अन्य कृतियाँ हैं–'तीन वर्ष', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' आदि। वर्मा जी भी नहीं रहे।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री–यह भी नहीं रहे पर इनकी अमर कृतियाँ नहीं मिटेंगी। ये अत्यन्त परिश्रमी थे। इन्होंने जितना अध्ययन या स्वाध्याय किया, उतना ही लिखा भी। इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं–'मन्दिर की नर्तकी' (1939), 'वैशाली की नगरवधू' (1947 ई.), 'आलमगीर'

(1954), 'सोमनाथ' (1954), 'वयं रक्षामः' (1955), 'सोना और खून' (चार भाग 1958), 'सह्याद्रि की चट्टानें' (1969) आदि। उनका उपन्यास 'वयं रक्षामः' अब तक प्रकाशित हिन्दी का श्रेष्ठ उपन्यास है। उसकी भाषा, शैली और शिल्प सभी बेजोड़ हैं। उनकी 'वैशाली की नगरवधू' भी एक अतिचर्चित कृति है।

राहुल सांकृत्यायन—राहुल सांकृत्यायन प्रसिद्ध यायावर एवं बौद्ध भिक्षु थे। इन्होंने तिब्बत और अन्य स्थानों से प्रचुर मात्रा में प्राचीन बौद्ध पांडुलिपियाँ एकत्रित कर भारत के साहित्य भंडार को समृद्ध किया। उनके द्वारा लाई गई कृतियाँ मुख्यतः पटना के प्रसिद्ध म्यूजियम में हैं। राहुल जी कई भाषाओं के धुरन्धर विद्वान् तो थे ही, चर्चित लेखक भी थे। उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'सिंह सेनापति' (1942), 'मधुर स्वप्न' (1950), 'विस्मृत यात्री' (1955), 'दिवोदास' (1961) आदि।

यशपाल—यशपाल एक समर्थ उपन्यासकार थे। उनके नायक सामाजिक परम्पराओं को बनाने और आवश्यकतानुसार उन्हें तोड़ने में भी समर्थ हैं। यही विशेषता उनकी औपन्यासिक कृतियों को विशिष्ट बनाती है। उनकी प्रमुख कृतियाँ है—'दिव्या' (1945), 'अमिता' (1956), 'झूठा सच' (1958)। 'झूठा सच' ने उन्हें बहुत यश दिया।

रांगेय राघव—यह मार्क्सवाद से प्रभावित साम्यवादी सोच के लेखक थे पर थे बड़े परिश्रमी और प्रतिभाशाली। उनका उपन्यास 'मुर्दों का टीला'(1948) अत्यन्त लोकप्रिय है। उनकी अन्य महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं 'चीवर' (1951), 'अंधेरे के जुगनू' (1953), प्रतिदान (1957), राह न रुकी, (1956), 'पक्षी और आकाश' (1958), 'महायात्रा—गाथा' 'कब तक पुकारूँ' इत्यादि।

हजारी प्रसाद द्विवेदी—श्री द्विवेदी संस्कृत से हिन्दी में आए। ये संस्कृत-साहित्य के उद्भट विद्वान् थे पर हिन्दी को भी उनका योगदान अमूल्य है। उनकी कृतियों में सर्वाधिक मोहक है—'चारु चन्द्रलेख' (1936), अन्य प्रसिद्ध औपन्यासिक कृतियाँ हैं—'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'पुनर्नवा' तथा 'अनामदास का पोथा'।

अमृतलाल नागर–नागर जी के उपन्यास 'मानस का हंस' ने, जिसका प्रकाशन 1975 के आसपास हुआ था, अपने शिल्प, कथ्य और प्रस्तुतीकरण के फलस्वरूप लोकप्रियता के सभी मानदंड तोड़ दिए थे। यह एक सुखद आश्चर्य है कि अभी भी प्रायः प्रतिवर्ष उसका नया संस्करण होता है।

उनका दूसरा उपन्यास 'खंजन-नयन', जो सूरदास की जीवन गाथा पर आधृत है, लोकप्रियता की दृष्टि से दूसरे स्थान पर है। नागर जी की अन्य कृतियाँ हैं–'बूंद और समुद्र', 'नाच्यौ बहुत गोपाल', 'पीढ़ियाँ' आदि।

कमलेश्वर–कमलेश्वर अकेले अपने बूते पर प्रयोगकर्मी बने रहे। 'नई कहानियाँ' पत्रिका के माध्यम से 'नई कहानी' का अलख जगाते रहे। उन्होंने इधर एक उपन्यास लिखा है 'कितने पाकिस्तान' जो बहुत अच्छी कृति बन पड़ी है। कई भाषाओं में इसके अनुवाद हुए और कई संस्करण अब तक हो चुके हैं।

विष्णु प्रभाकर–प्रभाकर जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी लेखक हैं। इनकी उम्र 2002 में नब्बे वर्ष हो गई फिर भी ये लेखन में सक्रिय हैं। प्रभाकर जी मूलतः नाटककार हैं और इनके कई नाटक प्रकाशित हैं। ये निबंधकार भी अच्छे हैं।

प्रभाकर जी को प्रसिद्धि मिली शरच्चन्द्र पर लिखित औपन्यासिक कृति 'आवारा मसीहा' से। इस पुस्तक के लिए आपने श्रम भी खूब किया। कई स्थानों के भ्रमण और अध्ययन-अन्वेषण के पश्चात् यह अनूठी पुस्तक आई।

भीष्म साहनी–यह भी पुरानी पीढ़ी के लेखक हैं। विष्णु प्रभाकर से इनकी उम्र थोड़ी ही कम होगी। कहानीकार के रूप में इन्होंने अच्छी ख्याति आर्जित की है। कुछ दिनों तक ये 'नई कहानियाँ' के सम्पादक भी रहे। इनके उपन्यास 'तमस' की काफी चर्चा हुई। इस पर इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला।

डॉ. भगवती शरण मिश्र–ऐतिहासिक-पौराणिक उपन्यासकारों में

इन्होंने सर्वाधिक लेखन किया है। प्रमुख कृतियाँ हैं–'पहला सूरज', 'पवनपुत्र', 'पुरुषोत्तम', 'पीताम्बर', 'काके लागूं पांव', 'गोबिन्द गाथा', 'देख कबीरा रोया', 'अथ मुख्यमंत्री कथा', 'शान्तिदूत', 'अग्निपुरुष' इत्यादि।

2. बंगला

बंगला स्वतन्त्र भाषा के रूप में करीब हज़ार वर्ष से चलती आ रही है पर उसके साहित्य का विशेष उदय इधर हाल के सौ वर्षों में हुआ है। प्राचीनतम बंगला के चरिया-पद 47 की संख्या में हैं जो बहुत काल से जाने हुए हैं। उनके अतिरिक्त और भी पद बनते रहे हैं, जिन्होंने प्राचीन बंगाल के जीवन से हमारा परिचय कराया है।

इस्लाम के हमले ने बंगाल की संस्कृति पर प्रतिकूल प्रभाव डाला, फिर भी बंगला की साहित्यिक गतिविधियाँ रुक न सकीं। मयूर भट्ट ने लाडसेन की कथा लिखी, काड़ा हरिदत्त ने बिहुला और लखिन्दर की। इस्लाम के आने के बाद पहला प्रसिद्ध पदकार बंगला में चण्डीदास हुआ, जिसने राधा-कृष्ण के प्रेम पर अद्‌भुत मधुर गान रचे। चण्डीदास के नाम से करीब 1200 पद विख्यात हैं, यद्यपि इनमें से थोड़े ही चण्डीदास के बनाये हुए हैं। उस गायक की लोकप्रियता ने अनेकों के पद उसके नाम के साथ जोड़ दिये। दीन चण्डीदास भी उसी परम्परा का कवि है और उसका 'कृष्ण-कीर्तन' मध्यकालीन बंगला का प्रसिद्ध काव्य है। चौदहवीं सदी के शुरू में होने वाले कृत्तिवास ओझा ने रामायण की कथा लेकर काव्य लिखा, जिससे उसने काफी ख्याति पाई। उस रामायण को 'कृत्तिवास रामायण' ही कहते हैं। उसका आधार बहुत हद तक वाल्मीकि रामायण है पर कवि की कुछ मौलिक उद्‌भावनाएँ भी इसमें

लक्षित हैं। उसका हिन्दी अनुवाद भी उपलब्ध है। पन्द्रहवीं सदी के चौथे चरण में मालाधर वसु ने गुणराज खाँ के नाम से कृष्ण की कथाएँ काव्यबद्ध कीं जो बड़ी लोकप्रिय हुईं। उन्हीं दिनों विजयगुप्त और विप्रदास ने बिहुला और लखिन्दर की प्रसिद्ध कविताएँ लिखीं।

पन्द्रहवीं सदी बंगला साहित्य में विशेष स्थान रखती है। उसी सदी में चैतन्य महाप्रभु ने श्रीमद्‌भागवत आदि का गहन अध्ययन कर अपनी भक्ति और प्रतिभा के आधार पर अपना अद्‌भुत भक्ति-रस बहाया और बंगला के मुसलमान सुल्तान भी बंगला के प्रति आकृष्ट हुए। रामायण-महाभारत और पुराणों की कथाएँ तब से उन्नीसवीं सदी तक लगातार काव्यबद्ध होती गईं।

पन्द्रहवीं सदी में ही विद्यापति के मधुर पद बंगाल के नए कवियों के गायन में बसे और बंगला में इस प्रकार एक नए गीति काव्य की धारा बही। बंगाली बहुत काल तक विद्यापति को बंगाली ही मानते रहे। यह विवाद खूब चला, यद्यपि वह मैथिल थे। ब्रजभाषा भी ब्रज-बुली के नाम से तभी बंगाल में प्रचलित हुई और उसने बंगला के कवियों पर अपना प्रभाव डाला।

पंद्रहवीं शताब्दी में चैतन्य महाप्रभु का जादू धीरे-धीरे सिर चढ़ता गया और सोलहवीं सदी के आते-आते वह अवतारी पुरुष बन गए। अतः उस सदी में उनके जीवन-चरित्रों की जैसे बाढ़ आ गई और 'चैतन्य-भागवत', 'चैतन्य-मंगल', 'चैतन्य-चरणामृत' आदि नामों से चैतन्य का चरित्र लिखा गया। इसी प्रकार अनेक वैष्णव संतों की कथाएँ भी सत्रहवीं-अठारहवीं सदी तक लिखी जाती रहीं।

सत्रहवीं सदी में अनेक मुसलमान कवियों ने भी बंगला का साहित्य सँवारा। फारसी और अरबी की परम्पराएँ बंगला में भी आईं और सूफी मत अनेक प्रकार और रूप से साहित्य में प्रविष्ट हुआ। दौलत काज़ी, कुरैशी, मुहम्मद खाँ, अब्दुल नबी, आलावोल आदि उस काल के प्रसिद्ध मुसलमान बंगाली कवि थे। इस दिशा में मुसलमान कवियों का दृष्टिकोण धार्मिक होता हुआ भी काफी रूमानी था, जिससे उनका काव्य विशेष

आकर्षक हुआ। उनमें आलावोल की काव्य-रचना ने अपने माधुर्य और आध्यात्मिकता के कारण अत्यधिक ख्याति अर्जित की।

सोलहवीं सदी के बंगाल के जीवन पर प्रकाश डालते हुए कवि-कंकण मुकुन्दराम चक्रवर्ती ने अपने चण्डी काव्य लिखे जो बड़े लोकप्रिय हुए। इस काल में नागमाता सम्बन्धी अनेक रचनाएँ प्रस्तुत हुईं।

सत्रहवीं-अठारहवीं सदी में गोपीचंद भरथरी सम्बन्धी गीत लिखे गए, जिनका प्रभाव बंगला से बाहर के साहित्यों पर भी पड़ा। उस काल यह विषय सबसे अधिक लोकप्रिय हुआ। बिहार, उत्कल और बहुत सीमा तक पूर्वी उत्तर प्रदेश में भरथरी के गीत लोक-गीतों की तरह प्रचलित हो गए।

साहित्य की दृष्टि से अठारहवीं सदी कुछ विशेष महत्व की न थी, पर हिन्दू-मुसलिम एकता की नींव उसमें अवश्य पड़ी, विशेषकर इस कारण भी कि फिरंगी सरकार बंगाल में तब तक प्रबल होने लगी थी। अठारहवीं सदी में ही बंगला गद्य का भी आरम्भ हुआ और कुछ कहानियाँ लिखी गईं। रामराम वसु ने 'प्रतापादित्य-चरित' और मृत्युजंय विद्यालंकार ने 'पुरुष-परीक्षा' लिखी। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ होते ही 'समाचार-दर्पण' नाम से बंगला में पहला पत्र निकला।

उन्नीसवीं सदी में राजा राममोहन राय और उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म-समाज के प्रयास से बंगाल में एक नया जागरण हुआ। उपनिषदों के अनुवाद बंगला में किये गये और अनेक संस्कृत ग्रंथ बंगला पढ़ने वालों की परिधि में आये। उस काल का बंगला-गद्य संस्कृत शब्दों से बोझिल है। उसको प्रवाहमय और सरल बनाने का श्रेय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, प्यारीचन्द मित्र और अक्षयकुमार दत्त को है। प्यारीचन्द मित्र ने तो आलानेर घरेर दुलाल' नाम का एक सामाजिक उपन्यास भी कलकत्ते में बोली जाने वाली टकसाली ज़बान में लिखा। अक्षय बाबू के निबन्ध विविध विषयों पर हैं।

उन्नीसवीं सदी के बीच वगला को दो महान् और यशस्वी साहित्यकारों का योग मिला। उनमें एक माइकेल मधुसूदन दत्त थे और दूसरे बंकिमचन्द्र

चट्टोपाध्याय। वह युग ही असल में उन्हीं दोनों के नाम पर चला और उनके प्रयास से एक नए तरुण बंगाल का जन्म हुआ। मधुसूदन दत्त का 'मेघनाद-वध काव्य' और 'ब्रजांगना काव्य' अत्यन्त मधुर भाषा में लिखे गये और बड़े लोकप्रिय हुए। बंकिम ने आधुनिक उपन्यास की परम्परा बंगला में डाली और अनेक देशी भाषाओं को अपने उपन्यासों से प्रभावित किया। 'दुर्गेशनन्दिनी', 'राजसिंह', 'सीताराम', 'विषवृक्ष' 'कृष्णकान्तेर बिल', 'कपालकुण्डला' और 'आनन्दमठ' बंकिम के प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'आनन्दमठ' में ही भारत का राष्ट्रीय गान 'वन्दे मातरम्' है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान पंजाब में रावी नदी के किनारे महात्मा गांधी के नेतृत्व में प्रथम बार भावी स्वतंत्र भारत का झंडोत्तोलन् इसी गीत से हुआ–

सुजलां सुफलां शस्य श्यामलां मातरम्, वन्दे मातरम्

बंकिमचन्द्र अंग्रेजों के जमाने में डिपुटी कलेक्टर नियुक्त हुए थे। सहकारी सेवा में रहते हुए भी निर्भय होकर उन्होंने राष्ट्रीय मानवता से पूर्ण लेखन किया। उसी काल में प्रसिद्ध और मेधावी भक्त रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द हुए जिन्होंने बंगाल के जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। रंगलाल बन्द्योपाध्याय ने तभी राजपूत वीरता सम्बन्धी कुछ बड़ी सुन्दर कविताएँ लिखीं। कालिदास के 'कुमारसम्भव' का बंगला अनुवाद उसी कवि ने प्रस्तुत किया।

बगला नाटक के निर्माताओं में पहला स्थान दीनबन्धु मित्र का है। उनका 'नील-दर्पण' बंगला के किसानों पर नील बोने वाले फिरंगी ज़मीदारों के अत्याचार का सचमुच दर्पण ही बनकर साहित्य में आया।

राजा राजेन्द्रलाल मित्र ने अनेक ऐतिहासिक निबंध लिखे और भूदेव मुखोपाध्याय ने अपने सामाजिक और सांस्कृतिक निबन्धों से बंगला को संवारा। उसी काल का कालीप्रसन्न सिन्हा द्वारा कलकत्ते की बोली में लिखा 'हुतोम पेन्चार नक्शा' उस काल के कलकत्ते के समाज का चित्र उपस्थित करता है। बिहारीलाल चक्रवर्ती ने जिस कल्पनाप्रधान काव्यधारा

का आरम्भ किया, उसकी परिणति रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं में हुई। रवि बाबू ने स्वयं बिहारीलाल का ऋण स्वीकार किया है। मधुसूदन दत्त के बाद ही नवीनचन्द्र सेन का बंगला काव्य में स्थान है।

रोमेशचन्द्र दत्त बंगाल के जाने हुए इतिहासकार हो गए हैं। उन्होंने अनेक उपन्यास भी लिखे हैं। गिरीशचन्द्र घोष भी तभी हुए और 1911 ई. तक जीते रहे। उन्होंने करीब 60 नाटक, हास्य, स्केच आदि लिखे। उसी काल के पुरातत्त्व के विद्वान पण्डित हरप्रसाद शास्त्री ने सन् 1932 तक अपने विविध पांडित्य का लाभ बंगला को दिया।

परन्तु बंगला साहित्य को सबसे महान् व्यक्तित्व रवींद्रनाथ ठाकुर के रूप में मिला। सन् 1913 में उन्हें उनकी पुस्तक 'गीतांजलि' पर नोबेल पुरस्कार मिला और संसार ने उनकी सर्वतोमुखी मेधा के सामने सिर झुकाया। इधर की सदियों में इतना महान् साहित्यकार न हुआ था। कालिदास के बाद भारतीय साहित्य में रवीन्द्रनाथ ठाकुर शायद सबसे महान् व्यक्ति हुए। उनकी कृतियों में काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध सभी हैं। पर रवि ठाकुर प्रधानतः कवि थे। प्रायः आधी सदी तक उनका लाभ बंगला को हुआ और उनकी अनेक रचनाएँ संसार की अनेक भाषाओं में अनूदित हुईं। रवि बाबू की काव्य भाषा सरल और आकर्षक थी।

रवि ठाकुर की प्रतिभा से अनेक कवि और नाटककार दब गए, फिर भी उस काल के कुछ प्रसिद्ध साहित्यकारों के नाम ये हैं–देवेन्द्रनाथ सेन, अक्षयकुमार बड़ाल, रजनीकान्त सेन, श्रीमती कामिनीराय, श्रीमती स्वर्णकुमारी देवी (उपन्यासकार), रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी (निबंधकार), सत्येन्द्रनाथ दत्त (कवि), प्रभातकुमार मुखोपाध्याय (उपन्यास-कहानीकार), द्विजेन्द्रलाल राय (नाटककार), क्षीरोदचन्द्र विद्याविनोद (नाटककार), अतुलप्रसाद सेन (गीतकार) और राखालदास बंद्योपाध्याय (इतिहासकार और उपन्यासकार)।

बंगला के सबसे बड़े उपन्यासकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय हुए। उनके उपन्यासों में बंगाल का आर्द्र और करुण जीवन फूट पड़ा। 'चरित्रहीन', 'श्रीकान्त', 'परिणीता', 'अरक्षणीया' आदि उनके अनेक उपन्यास

देश-भर में प्रसिद्ध हुए।

शरत्‌चन्द्र के बाद सामाजिक क्रान्ति ने एक नई दिशा की ओर संकेत किया। प्रगतिशील साहित्यकारों ने विशेष मनोयोग से नए युग का साहित्य सम्हाला। उपन्यास के क्षेत्र में अन्य अनेक मेधावी लेखकों के अतिरिक्त मनोज वसु और ताराशंकर बन्धोपाध्याय अग्रणी हैं। आलोचना के क्षेत्र में गोपाल हालदार ने विशेष स्फूर्ति भरी।

इधर के दिनों में भी बंगला साहित्यकार विशेषकर उपन्यासकार अच्छा लिख रहे हैं।

'साहब, बीबी और गुलाम' तथा 'खरीदी कौड़ियों के मोल' जैसे बृहत् उपन्यास लिखकर विमल मित्र ने भी राष्ट्रव्यापी ख्याति अर्जित की। उनके उपन्यासों का हिन्दी के साथ कई भाषाओं में अनुवाद हुआ।

सुनील गंगोपाध्याय जीवित लेखकों में अग्रिम पंक्ति में हैं। लेखिकाओं में महाश्वेता देवी तथा आशापूर्णा देवी ने पर्याप्त प्रतिष्ठा अर्जित की।

3. गुजराती

गुजरात का साहित्य भी काफी भरा-पूरा है। गुजराती बोलने वालों की संख्या प्रायः पाँच करोड़ है और उसके बोलनेवाले न केवल भारत में बल्कि एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों में फैले हैं।

गुजराती का साहित्य जैनों ने अपने ग्रन्थ लिखकर आरंभ किया। इस दृष्टि से यह साहित्य करीब दसवीं सदी में ही शुरू हो गया था। जैनों से भिन्न साहित्यकारों का उदय पन्द्रहवीं सदी के बाद हुआ। तभी मीराबाई ने अपने मधुर पद लिखे। मीरा के पद गुजराती में नहीं थे किन्तु गुजराती जनता में वे इतने लोकप्रिय हुए कि भाषा को जहाँ-तहाँ बदलकर उन्हें गुजराती बना डाला गया।

उस काल के प्रधान कवि नरसिंह मेहता, बल्लभ, मेवादो और अखो हुए। तीनों ने धर्म-सम्बन्धी कविताएँ लिखीं जिनका बड़ा आदर हुआ। बल्लभ ने प्रकृति में मातृत्व देखा और अखो ने दुनियावी बेईमानी को धिक्कारा। उनके बाद ही गुजराती साहित्य के महान कृतिकार प्रेमानन्द ने पौराणिक आख्यान लिखे जो बहुत काल तक जीवन के आदर्श बने रहे।

उसी काल सामल ने कहानियाँ लिखीं। उसकी कहानियों में जात-पाँत का भेद-भाव न रहा। इस दिशा में उसने नरसिंह मेहता का अनुकरण किया। सामल के बाद एक नई धारा बही और नए कवियों ने समाज की रूढ़ियों और ठेकेदारों पर गहरे आघात किये। धर्म का सहारा उन्होंने छोड़ दिया और सामाजिक कुरीतियों को अपने काव्य का विषय बनाया। पुराने दृष्टिकोण के कवियों में प्रधान दयाराम हुआ जिसने प्रेम और रस से ओतप्रोत बल्लभ सम्प्रदाय सम्बन्धी कविताएँ लिखीं।

बल्लभ, कृष्ण भक्ति के आचार्य थे। उन्होंने यद्यपि संस्कृत में रचनाएँ कीं पर हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी साहित्य पर उनका काफी प्रभाव रहा। सूरदास को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि बल्लभ ने ही बनाया।

1825 ई. से गुजराती साहित्य का वर्तमान युग शुरू होता है। उसके आरम्भ करने वालों में प्रधान दलपतराम और नर्मदाशंकर थे। उन्नीसवीं सदी के अन्त में उनका देहान्त हुआ। उन्होंने भाषा में नई जान डाली, नया रस भरा। गद्य भी तब नए सिरे से लिखा जाने लगा।

पिछले काल में गुजराती के अच्छे लेखक निम्नलिखित हुए–

महात्मा गांधी, काका कालेलकर, आनंद शंकर ध्रुव, कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, मेघाणी, कलापी, उमाशंकर जोशी। कन्हैया लाल मुंशी का योगदान इस रूप में अधिक है कि उन्होंने पौराणिक ग्रन्थों से गुजराती को बहुत कुछ दिया। महाभारत को उन्होंने कई खण्डों में लिखकर उनके पात्रों से सामान्य पाठकों का परिचय कराया।

यहाँ उन्नीसवीं और बीसवीं कुछ प्रधान साहित्यकारों के नाम दिए

जाते हैं—ग. म. त्रिपाठी ने 'सरस्वतीचन्द्र' नाम का चार भागों में देशी राज्यों-सम्बन्धी उपन्यास लिखा। बहरामजी मालाबारी ने काव्य में दलपत और नर्मदाशंकर का अनुकरण किया। महात्मा गांधी ने गुजराती में अनेक पुस्तकें लिखीं ओर शैली को निखारा। उन्होंने गीता का भी गुजराती में अनुवाद किया। बाद में वह अंगेजी में भी आया। पारसी लेखक खबरदार ने गद्य-पद्य दोनों लिखे। उनकी शैली में व्यंग्य काफी है। नानालाल दलपतराम ने गीति-काव्य, नाटक, उपन्यास और निबन्ध भी लिखे। आनन्द शंकर बापूभाई ध्रुव ने गुजराती में धर्म और दर्शन पर अनेक ग्रन्थ लिखे और दीवान बहादुर ध्रुव ने अनेक संस्कृत नाटकों के अनुवाद किये।

नीलकण्ठ ने गुजराती में सुन्दर आलोचना की परम्परा आरम्भ की। ठाकुर ने गद्य-पद्य दोनों लिखे। गद्य में तो उसने अपनी शैली ही चला दी। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने गुजराती साहित्य को अपने ऐतिहासिक उपन्यासों से भी समृद्ध किया। रमनलाल देसाई भी माने हुए उपन्यासकार हैं। उन्होंने पारिवारिक और सामाजिक विषयों का अपने उपन्यासों और नाटकों में चित्रण किया। झवेरचन्द मेघाणी ने गुजराती लोक-कथाओं का संग्रह कर अनेक प्रान्तों के तत्सम्बन्धी प्रयत्नों पर प्रभाव डाला। दिवेटिया ने काव्य और आलोचना दोनों में अपनी शक्ति प्रदर्शित की। मणिशंकर रतनजी भट्ट ने 'कान्त' नाम से गुजराती में मधुर काव्यधारा बहाई। गुजराती साहित्य के पिछले काल के प्रधान कवियों में अग्रणी 'कलापी' माने जाते हैं। उनका प्रकृत नाम सुरसिंह गोहिल था और वे काठियावाड़ में लाठी के ठाकुर थे। उनकी कविता में बड़ी करुणा है। 1900 ई. में उनका देहान्त हुआ। उमाशंकर जोशी ने कविता के अतिरिक्त आलोचना के क्षेत्र में भी काफी लिखा। श्री जोशी नई पीढ़ी के गुजराती लेखकों, विशेषकर समीक्षकों के प्रेरणा-स्रोत रहे हैं।

गुजराती साहित्य को पारसी, मुसलमान और हिन्दू तीनों का योग मिला और तीनों ने बिना किसी भेदभाव के अपनी सुन्दरतम रचनाएँ उसे दीं।

4. मराठी

मराठी भाषा का जन्म महाराष्ट्रीय प्राकृत और अपभ्रंश द्वारा प्रायः दसवीं सदी में ही हो गया था। मराठी का विस्तार उत्तर में दमन से दक्षिण में गोवा तक है और पश्चिम में मुम्बई से लेकर मध्यप्रदेश तक।

आरम्भ में मराठी में बहुत काल तक धार्मिक काव्य ही लिखे गए। नाथ पंथ और भक्ति-मार्ग के आधार से इस दिशा में विशेष प्रगति हुई। वैसे परम्परा के अनुसार तो मराठी भाषा का आरम्भकर्ता दार्शनिक कवि मुकुन्दराज माना जाता है। महानुभाव पंथ की भाषा उसके कुछ ही बाद सारे भारत में मराठी हुई। उस पंथ के प्रधान काव्यकार भास्कर भट्ट, नरेन्द्र दामोदर भट्ट और महीन्द्र भट्ट हुए। भास्कर भट्ट ने 'शिशुपाल-वध' और 'उद्धवगीत' लिखे, नरेन्द्र ने 'रुक्मिणी स्वयम्वर', दामोदर भट्ट ने 'वस्त्रहरण' और महीन्द्र भट्ट ने पंथ के प्रवर्तक चक्रधर का चरित्र लिखा।

13वीं सदी के अन्त में कवि-दार्शनिक ज्ञानेश्वर हुए और उन्होंने धार्मिक आन्दोलन को एक नया मोड़ दिया। 'भगवद्‌गीता' पर अत्यन्त सुन्दर शैली में उनकी व्याख्या 'ज्ञानेश्वरी' प्रस्तुत हुई। गीता पर 'ज्ञानेश्वरी' सदृश और कोई ग्रन्थ नहीं आया। एक अर्थ में यह लोकमान्य तिलक के गीता से भी बढ़कर है। उनका दूसरा ग्रन्थ 'अमृतानुभव' उतना लोकप्रिय न हो सका। सन्त ज्ञानेश्वर से सन्त नामदेव उम्र में कुछ बड़े थे। उनकी भक्ति अत्यन्त सरल थी और उन्होंने अनेक भक्तिपरक मधुर पद रचे। उनके अभंग पंजाब तक जा पहुँचे।

अभंगों की परिपाटी देर तक मराठी में चलती रही। नामदेव की दासी जनाबाई ने भी अनेक मधुर अभंग लिखे। इस पंथ के अधिकतर गायक नीचे कुलों के थे। गोरा कुम्हार था, विठोबा (नामदेव का गुरु) सौदागर, नरहर सुनार, स्वता माली और जोगा तेली। इन सन्तों की वाणी काव्यमयी थी और अनेक बार उनके पदों में मधुर राग फूट पड़ा।

अगली सदियाँ मराठी साहित्य में अन्धकारमयी रहीं। 15वीं सदी के मध्य भानुदास ने विठोबा के अनुसरण में कुछ प्रयत्न किए। उनके

पड़पोते एकनाथ के गुरु जनार्दन स्वामी ने तब अपना दत्त पंथ चलाया। एकनाथ ने 'एकनाथी भागवत' और 'भावार्थ रामायण' रचे। 'रुक्मिणी-स्वयंवर' भी उन्हीं का लिखा है।

एकनाथ के पोते मुक्तेश्वर ने महाभारत का पहला मराठी अनुवाद प्रस्तुत किया। अनुवाद के रूप में उसने केवल उसकी रूपरेखा ही रखी, बाकी कथा उसने अपने ही शब्दों में कही। कविता ने उसके हाथ में एक नया मोड़ लिया। मुक्तेश्वर के बाद ही मराठी साहित्य के तीन महान् व्यक्तित्व हुए—तुकाराम, रामदास और वामन पण्डित। वामन महान् पण्डित था। उसके प्रबन्ध काव्य सुन्दर और रसमय हैं। रामदास ने रामदासी पंथ चलाया। वे अपनी प्रसिद्धि के बल पर क्षत्रपति शिवाजी के गुरु बने। 'दासबोध' उन्होंने अपने शिष्यों के आचरण के लिए लिखा। उस ग्रन्थ को मराठी धार्मिक साहित्य में उच्च स्थान मिला। तुकाराम जाति के मोदी थे और पढ़े-लिखे न थे। वे सन्त अधिक थे, कवि कम, परन्तु उन्होंने भक्ति की धारा अपने पाँच हज़ार अभंगों में प्रवाहित की।

वामन पण्डित की संस्कृत शैली का भी काफी अनुसरण हुआ। मराठी का एक गढ़ तंजोर था, जहाँ आनन्द तनय और रघुनाथ पण्डित विशेष प्रतिभावान हुए। रघुनाथ पण्डित का 'दमयन्ती-विवाह' बहुत लोकप्रिय हुआ। उस काल निरंजन माधव और सामराज्य ने भी कविता के क्षेत्र में काफी यशलाभ किया।

अठारहवीं सदी का प्रधान कवि मोरोपन्त था। उसने 'मंत्र-भागवत' और 'आर्या-भागवत' लिखे। आर्या छन्द का वह अधिकारी आचार्य है। उसकी गेय कविता की 'एकावली' काफी प्रसिद्ध हुई। साहित्य में मोरोपन्त का भी खूब अनुसरण हुआ। मोरोपन्त के बाद मध्व-मुनेश्वर, अमृतराय और महीपति ने काव्य-साधना की।

उसी सदी में वीर-चरित्र (पवाड़ा) भी काव्य के विषय बने। पवाड़ों की भाषा जनपरक थी, संस्कृत की बोझिल शैली से स्वतन्त्र। वीर-चरितों के अतिरिक्त एक नए प्रकार की प्रेम-कविताएँ भी चलीं जिन्हें 'लावनी' कहते थे। लावनी छोटी गेय कविताएँ होती थीं, मात्रा छन्द में प्रस्तुत।

उनमें अधिकतर राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन हुआ।

उन्नीसवीं सदी म अनक अनुवाद हुए। संस्कृत और अंग्रेज़ी दोनों के ग्रन्थ मराठी में प्रस्तुत किए गए। इसके अतिरिक्त 'लोकहितवादी' निबन्धों की भी परिपाटी चली। सन्त कवियों के अभंग संगृहीत और सम्पादित हुए। 1843 ई. में महाराष्ट्र का रंगमंच बना जिसपर पौराणिक नाटक खेले जाने लगे।

शीघ्र ही लोकहितवादियों का प्रभुत्व बढ़ा और रूढ़ियों पर चोट पड़ने लगी। गोपाल हरि देशमुख ने 'शतपत्रे' नाम से उस दिशा में बार-बार आघात किए। उन्हीं दिनों महादेव गोविंद रानाडे, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर और कुन्ठे ने महाराष्ट्र का ध्यान प्राचीन भारतीयता की ओर आकर्षित किया, साथ ही पश्चिम की संस्कृति को भी उचित मात्रा में देश के लिए आदर्श माना। विष्णु शास्त्री चिपलूणकर ने उसी काल 'निबन्धमाला' द्वारा मराठी में नए गद्य की शैली प्रस्तुत की। निबन्ध के रूप में उस लेखक ने अपने हाथों में एक महान् अस्त्र धारण किया। बाल गंगाधर तिलक और आगरकर ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध लड़ते हुए भारतीय स्वतन्त्रता के क्षेत्र में सराहनीय प्रयत्न किये। भगवद्गीता पर 'गीता-रहस्य' नाम की तिलक की व्याख्या तो आजादी के युवकों की पावन पुस्तक ही बन गई और उसका अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ।

अगले युग में नरसिंह चिंतामणि केलकर और पराञ्जपे ने अपने साप्ताहिक पत्रों द्वारा मराठी को खूब भरा-पूरा। काका कालेलकर के समान गद्यकार और पत्रकार मराठी में शायद दूसरा न हुआ।

1880 ई. के बाद मराठी नाटक का अनवरत विकास हुआ। संस्कृत और अंग्रेज़ी के नाटक अनूदित हुए और खेले गये। किर्लोस्कर ने संस्कृत नाटकों के खेलने में विशेष सफलता पाई। कोल्हटकर ने शेक्सपीयर की शैली को सामाजिक नाटकों में अपनाया। गडकरी उस काल का सबसे बड़ा नाटककार हुआ। नाटक को तब के साहित्यिक क्षेत्र में विशेष सम्मान मिला। हरि नारायण आप्टे ने अनेक ऐतिहासिक और सामाजिक

उपन्यास लिखे। उनके 'सूर्यग्रहण' और 'उषाकाल' का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ।

काव्य के क्षेत्र में यूरोपीय शैली ने अपना प्रभुत्व जमाया। संस्कृत छन्द छोड़कर मराठी छन्द अपनाये जाने लगे। केशवसुत, गडकरी, तिलक, विनायक, माधवानुज, सबने उसी शैली को अपनाया। कोल्हटकर और गडकरी ने व्यंग्यपरक प्रहसन लिखे और हास्यपरक साहित्य के निर्माताओं में कप्तान लिमये, आचार्य अत्रे और जोशी का प्राधान्य रहा। कोल्हटकर ने आलोचना में भी प्रगति की। युद्धोत्तर काव्यकाल में 'रविकिरण मण्डल' ने विशेष कार्य किये। ताम्बे उस दिशा में अग्रणी थे। अत्रे और माधव जुलियन उस मंडल के प्रधान सूत्रधार थे। माधव जुलियन व्यंग्य में असाधारण कुशल हैं। अत्रे ने नाटक के क्षेत्र में असाधारण योग्यता प्रदर्शित की है और आज के मराठी रंगमंच का वह प्रधान निर्माता है।

उपन्यास के क्षेत्र में फड़के का नाम उल्लेखनीय है। उसने अधिकतर उच्च वर्ग को अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। दूसरा प्रसिद्ध मराठी नाटककार खांडेकर है। मुघोलकर ने राजनीतिक उपन्यासों की रचना की। कथा-साहित्य में मराठी में विशेष प्रगति हुई है। खांडेकर, फड़के और जोशी ने अनेक सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं।

मराठी ने बहुत लोकप्रियता प्राप्त की है। शिवाजी सामंत आज के प्रतिनिधि मराठी उपन्यासकार हैं। उनकी पुस्तक 'मृत्युंजय' ने धूम मचा दी। कर्ण के जीवन पर आधरित इस उपन्यास का अनुवाद कई भाषाओं में हो चुका है। उनका दूसरा प्रसिद्ध उपन्यास है 'छावा' जो 650 पृष्ठों का है और शिवाजी के बेटे राजाराम के जीवन पर आधृत है। प्रभाकर माचवे ने मराठी, हिन्दी के मध्य सेतु बनने का काम किया।

5. तमिल

तमिल, संस्कृत को छोड़कर भारत की भाषाओं में सबसे पुरानी भाषा है। शायद ढाई हज़ार साल पुरानी। उसके साहित्य पर समय-समय पर संस्कृत का प्रभाव पड़ता रहा है और संस्कृत के अनेक शब्द भी उसमें घुल-मिल गये हैं पर साधारण तौर से वह संस्कृत से स्वतन्त्र है। उसका अपना साहित्य है, अपना व्याकरण है, उसने स्वयं संस्कृत को अनेक शब्द दिये हैं।

तमिल साहित्य का आरम्भ 'संघों' में हुआ। लगता है कि समय-समय पर ये 'संघम्' कायम हुए और बहुत काल तक दक्षिण के पांड्य राजाओं के दरबार में फलते-फूलते रहे। इस प्रकार के तीन संघों का पता चलता है। 'संघम्' का अर्थ है, अकादमी या साहित्य सभा। हरेक संघ में अनेक कवि हुए और प्रत्येक ने अपने कवियों और साहित्यकारों की रचनाओं का संग्रह किया। पहले 'संघम्' का प्रधान अगस्त्य ऋषि को बताया जाता है और कहते हैं कि उसने तमिल का पहला व्याकरण लिखा। दूसरे 'संघम्' की प्रधानता का श्रेय भी उसी ऋषि और उसके शिष्य तोलकापियर को दिया जाता है। तोलकापियर का लिखा 'तोलकापियम्' नाम का एक व्याकरण आज भी मिलता है। बाकी और कोई पुस्तक पहले दोनों संघों की अब तक नहीं मिली है।

तीसरे 'संघम्' का साहित्य आज भी मिलता है जो कविताओं के संग्रह-रूप में बचा हुआ है। इस प्रकार के साहित्य के तीन संग्रह हैं—पहले संग्रह में आठ सुभाषितावलियाँ हैं, जिसमें 530 कवियों की करीब ढाई हज़ार कविताएँ संगृहीत हैं। इनको 'एद्रुतोगई' कहते हैं। संघम् का दूसरा संग्रह दस प्रशस्तियों का है जिनमें देवताओं की अर्चना में लिखी कविताएँ हैं। इनमें पाण्ड्य और चोल राजाओं एवं उस काल की जनता के भी चित्रण मिलते हैं। इस संग्रह का नाम 'पत्तुपाट्टु' है। तीसरा संग्रह अठारह कविताओं का है जो मूलतः आचार और नीति-सम्बन्धी हैं। इन अठारहों को एक साथ 'पदितेन्किल्कणक्कु' कहते हैं। इन्हीं में तमिल साहित्य

का अमर त्रिवर्ग है, जिसे 'कुरल' कहते हैं और जिसका दूसरा लोकप्रिय नाम 'ज्ञुप्पाल' भी है। यह तिरुवल्लुवर की कृति है और धर्म, अर्थ और काम की व्याख्या करती है। 'संघम्' युग के कवियों में प्रधान नक्कीरर, कपिलर और परनर थे। अव्वैयर 'संघम्' की सबसे प्रसिद्ध स्त्री-कवि है। अनेक संग्रहों में उसकी कविताएँ मिलती हैं। ये कवि अधिकतर ईसा की दूसरी सदी के आसपास हुए। तीसरे 'संघम्' का युग सातवीं सदी से पहले का है।

तमिल साहित्य के पाँच प्रधान काव्यों में दो–'शिलप्पदिकारम्' और 'मणिमेकलै' हैं। 'शिलप्पदिकारम्' का कवि इलंगो अडिगल शायद ईसा की दूसरी सदी में हुआ। वह चेर राजवंश का था। इस महाकाव्य की कथा बड़ी मनोरंजक है और इसमें उत्कृष्ट साहित्यक शैली, संगीत और नाटक तीनों का व्यवहार हुआ है। 'मणिमेकलै' की रचना कूलवाणियम सात्टनार ने की थी। वह अडिगल का समकालीन था। अपने काव्य में उसने उसी वीरांगना माधवी और उसकी कन्या मणिमेकलै का कथा-विस्तार किया है, जो 'शिलप्पदिकारम्' की नायिका है। इस प्रकार दूसरे काव्य में भी पहले की कथा चलती रहती है।

आगे की दो-तीन सदियाँ साहित्य की दृष्टि से ऊसर थीं। छठी सदी के लगभग तिरुमुलर और करैकल अमैयार ने पुनर्जागरण का आन्दोलन उठाया। जैन और बौद्ध धर्मों पर शैव और वैष्णव सन्तों के आघात शुरू हुए। शैव मन्दिरों में नित्य गाया जाने वाला 'तिरुवाचकम्' इसी काल में लिखा गया। इसी काल में तीन महान् सन्तों–अप्पर, सुन्दरर और सम्बन्दर के लिखे सूक्त भी 'तेवारम्' नाम से संगृहीत हुए। 12वीं सदी में उस काल के प्रसिद्ध कवि सेक्किलर ने शैवों का 'पेरियपुराणम्' रचा।

इसी प्रकार वैष्णव आचार्यों ने भी अनेक रचनाएँ कीं। उनके शुरू के 12 आचार्यों को आलवार कहते हैं। उनके पदों के संग्रह का नाम 'नालायिरप्रबन्धम्' है। इन सन्तों में सबसे महान मम्मालवार था। इन्हीं आलवार सन्तों में संत पेरियालवार की कन्या सन्त आन्डाल थी, जिसने

अपनी महान् रचना 'नाचियांर तिरुमोलि' में विष्णु के पद गाये और अपने को उसकी प्रिया कहा। आन्डाल तमिल काव्य की एक प्रतिभाशालिनी संत कवयित्री हुई, उसकी तुलना हिन्दी की मीराबाई से की जाती है। आलवारों की काव्य परम्परा में अत्यंत सुन्दर कविताएँ प्रस्तुत हुई। उसी काल कुछ लौकिक रचनाएँ भी हुई जिनका धर्म से कुछ सम्बन्ध न था।

दसवीं और तेरहवीं सदियों के बीच तंजोर का चोल साम्राज्य प्रबल रहा। उसी काल सेक्किलर ने 'पेरियपुराणम्' और कम्बर ने 'रामायण' रचा। यह रामायण तमिल काव्य की चूड़ामणि है। उसे 'कम्ब रामायण' नाम से भी जानते हैं जिसका हिन्दी अनुवाद भी उपलब्ध है। उसका आधार भी वाल्मीकि रामायण है पर कवि ने उसमें अपनी मौलिक कल्पना का भी भरपूर उपयोग किया है। कम्बर 12वीं सदी में हुआ।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में धार्मिक काव्य की धारा बही और तायुमान स्वामी ने अपने मधुर काव्य लिखे। तभी अतिवीर राम पाण्ड्यन ने 'नैषध' लिखा और कूर्मपुराण का अनुवाद किया। सुब्रह्मण्य की स्तुति में गाये अनुपम 'तिरुप्पुगल' की रचना भी पन्द्रहवीं सदी में अरुण गिरिनाथ ने की।

जैनों ने भी तमिल साहित्य के विकास में अपना योगदान किया। तमिल के पंच महाकाव्यों में प्रधान 'जीवक चिन्तामणि' जैन तिरुत्तक देवर की रचना है। इस काव्य ने तमिल में संस्कृत काव्य-रूप का प्रारम्भ किया।

पुर्तगालियों के आने के साथ 16वीं सदी के अन्त में तमिल साहित्य के वर्तमान रूप का आरम्भ हुआ। राबर्ट दी नोबिली ने अपना, तत्त्वबोधक स्वामी' नाम रखकर तमिल में अनेक ग्रन्थ लिखे और एक 'तमिल-पुर्तगाली कोश' भी प्रस्तुत किया। ऐसे ही एक दूसरे पुर्तगाली ने वीर महामुनि के नाम से अनेक ग्रन्थ लिखे। उसके अनेक काव्य ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। उन्नीसवीं सदी के मध्य यूरोप के प्रभाव में आकर तमिल साहित्य में नई लहर उठी। अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं और 1870 में सुब्रह्मण्य अय्यर का दैनिक 'स्वदेशमित्रन्' छपने लगा जो बहुत

लोकप्रिय हुआ। इस प्रकार तमिल गद्य का पर्याप्त उत्कर्ष हुआ। गद्य की ही भाँति तमिल नाटकों का भी विकास हुआ। पुराने नाटक तो नष्ट हो गए हैं। सुन्दर पिल्ले का 'मनोन्मणीयम्' एक माना हुआ वीर-छन्द में लिखा नाटक है। लक्ष्मण पिल्ले की 'सत्यवती' शेक्सपीयर की 'सिम्बेलीन' पर आधारित है। सूर्यनारायण शास्त्री के नाटक 'रूपवती', 'कुलवती' और 'सरसलोचन', चेट्टियर की 'सरसांगी' काफी यश कमा चुके हैं।

कवियों में शास्त्रीयर, वेदनायकम् पिल्ले और सुब्रह्मण्यम भारती काफी प्रसिद्ध हुए। इनमें अन्तिम राष्ट्रीय कवि है जिसने अपने 'स्वदेशगीतम्' में बड़ी सुन्दर राष्ट्रीय कविताएँ प्रस्तुत कीं।

गद्य और कथा-साहित्य में विशेष उन्नति हुई। इस युग का सबसे पहला गद्यकार तांडवराय मुदलियर है, जिसने तमिल का प्रसिद्ध 'पंचतन्त्रतम्' लिखा। तमिल की सरल और शालीन गद्य-शैली अरुमुग नवलर ने प्रस्तुत की। राजम् अय्यर ने पहला यथार्थवादी उपन्यास 'कमलाम्बाल' लिखा। 'पद्मावती' भी यथार्थवादी उपन्यासों में से है। उसी परम्परा में सरवन पिल्ले की 'मोहनांगी' है।

तमिल साहित्य का विस्तार बड़ा है और विस्तार के साथ ही उसकी चोटी भी ऊँची है। इधर के तमिल साहित्यकारों, विशेषकर कवियों में, सुब्रह्मण्यम स्वामी शिखर पर हैं। उनकी कृतियों का हिन्दी सहित कई भाषाओं में अनुवाद हुआ। वर्तमान तमिल लेखकों में बालशौरि रेड्डी का नाम शिखर पर है। तमिल पत्रिका 'ओम् शक्ति', जो चेन्नई से प्रकाशित होती है, ने कुछ अच्छे लेखक तैयार किए हैं। उसकी अत्यधिक लोकप्रियता ने तमिल साहित्य की अभिवृद्धि की है। श्री शौरिराजन भी अच्छा लिख रहे हैं। उनके अतिरिक्त पी. ई. सुमणि तथा एस. सुब्रह्मण्यम ने भी अच्छा काम किया है। आज भी सुन्दरतम कृतियों की रचना हो रही है।

6. तेलुगू

तेलुगू साहित्य भी तमिल की ही तरह संस्कृत से स्वतन्त्र द्राविड़-वर्ग का है। वैसे कहा तो वह साहित्य भी बहुत प्राचीन जाता है परन्तु आठवीं सदी से पहले की रचनाएँ उसमें बहुत कम मिलती हैं। तेलुगू साहित्य का आदि काल 11वीं सदी के आरम्भ से शुरू होता है।

तेलुगू साहित्य का पहला कवि नन्नय 11वीं सदी के आरम्भ में हुआ, जब गोदावरी के तीर राज महेन्द्रवरम् में पूर्वी चालुक्य राजा राजराज शासन करता था। नारायण भट्ट की सहायता से उसने महाभारत का अनुवाद तेलुगू में किया। तब तक नारायण भट्ट आठ भाषाओं में अपनी कविताओं के लिए प्रसिद्ध हो चुका था। तेलुगू में भी उसने कविता की और नाम कमाया। दोनों मिलकर केवल तीन ही पर्व तेलुगू में प्रस्तुत कर सके, पर उस अनुवाद की शैली अत्यन्त सुन्दर थी।

दो सदियों बाद तिक्कण ने अपना 'निर्वचनोत्तर रामायण' लिखा। उसने महाभारत तेलुगू में पूरी कर दी। तिक्कण के अनेक समकालीनों ने काव्य रचे पर अधिकतर वे पुराणों और संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद ही थे। तेलुगू में चम्पू शैली की रामायण पाँच कवियों ने मिलकर प्रस्तुत की। सोमनाथ के 'वासव पुराण' और 'पण्डितराज चरित्र' शैव आन्दोलन के प्रधान ग्रन्थ हैं।

पन्द्रहवीं सदी में महाराष्ट्र, गुजरात और बंगाल में वैष्णव-भक्ति आन्दोलन ज़ोर से चल पड़ा था। तभी पोतन्न ने भागवत लिखा जिससे तेलुगू साहित्य को एक नई दिशा मिली। बालकृष्ण तेलुगू कवियों के आराध्य हुए। इन्हीं दिनों श्रीनाथ नाम का विख्यात साहित्यकार हुआ जो दरबार-दरबार पूजा गया और जिसे 'कवि सार्वभौम' की उपाधि मिली। उसने तेलुगू में अनेक अद्भुत माधुर्यपूर्ण काव्य लिखे। 'नैषध', 'काशीखण्डम्', 'भीमखण्डम्', 'हरविलासम्' और 'पल्नति वीरचरित्रम्' उसकी रचनाएँ है, जिनका साहित्य में ऊँचा स्थान है।

विजयनगर राज्यकाल में भी तेलुगू में साहित्य की उन्नति हुई। उस काल की शैली मृदुल और मधुर थी। नचन सोमनाथ ने 'उत्तर हरिवंश' लिखा और पीरविरन्न ने 'जैन-भारतम्' और 'शकुन्तला-परिणयम्' मधुर पद्य में लिखे। इस काल में विशेष महत्व प्रबन्ध काव्यों को मिला। राजा कृष्णदेवराय ने स्वयं असाधारण काव्य-शक्ति द्वारा समकालीन जीवन को अपने काव्य 'अमुक्तमल्यद' में मुखरित किया। कृष्णदेवराय के कवियों में सबसे महान् पेद्दन था। उसने अपने 'अनुचरित' में सरल मानवप्रवर और सुन्दरी कन्या वरुधुनि का प्रेम-वर्णन किया है। कृष्णदेवराय के दरबार के आठ महान् कवि 'अष्ट दिग्गज' कहलाते थे। इनमें धूर्जटी ने 'कलहस्ति माहात्म्य' लिखा। मल्लन्न ने 'राजशेखर विलास', तल्लपक ने 'अष्टमहिषि कल्याण' आदि लिखे। रामकृष्ण ने 'पांडुरंग माहात्म्य' लिखा। नृसिंह और रामराज्य भूषण भी उस राजसभा के यशस्वी कवि थे। रामराज्य भूषण के रूपक 'वसुचरित्र' के बाद में अनेक अनुकरण हुए।

दक्षिण तेलुगू प्रान्त में वेंकट कवि विशेष प्रसिद्ध हुआ। उसकी 'विजय-विलासम्' और 'सरगोधाचरित्रम्' नाम की रचनाएँ अपने साहित्यिक माधुर्य के लिए काफी प्रसिद्ध हुईं। अन्य कवि साधारणतः पुरानी शैली में ही लिखते रहे और उनकी शैली संस्कृत आधारों से आगे न बढ़ी।

अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियाँ अधिकतर ऊसर ही रहीं और देश सभी प्रकार के अकाल से परेशान रहा। बीसवीं सदी में वीरेशलिंगम् ने साहित्यक शैली को नया रूप दिया और उसे जन-बोली के निकट खींच लाया। आधुनिक तेलुगू साहित्य का वह जनक था। उसकी प्रतिभा भी बहुमुखी थी और उसने चरित, उपन्यास, काव्य, अलंकार सब कुछ लिखा।

लक्ष्मी नरसिंहम् आन्ध्र का अन्ध कवि कहलाता है। उसके उपन्यास और नाटक बड़ी सजीवता व ताज़गी लिए हुए हैं। गुरजाडा अप्पाराव ने सामाजिक नाटक 'कन्याशुल्कम्' लिखा, जो काफी विख्यात हुआ। उसके मित्र राममूर्ति पन्तुलु ने वर्तमान तेलुगू साहित्य के विकास में प्रधान

भाग लिया। नई शक्ति, नया रूप, नई आज़ादी साहित्य को मिली। श्रीनिवास रायप्रोलु ने आन्ध्र में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की काव्य-धारा बहाई और जिस साहित्य-समिति का यहाँ श्रीगणेश हुआ, बाद के समर्थ तेलुगू साहित्यकार उसी के सदस्य थे।

इधर पीठापुरम् के रामराव बहादुर ने सुन्दर गीति-काव्य प्रस्तुत किए। प्रोद्दुतुर के कवियों ने भी काव्य-क्षेत्र में सुन्दर रचनाएँ कीं। गडियाराम वेंकटेश शास्त्री का 'शिव भारत ' शिवाजी के भारत पर सुन्दर काव्य है। एक और महत्त्व का काव्य 'राणा प्रतापसिंह चरित्रम्' है, जिसका विषय उसके नाम से ही स्पष्ट है।

इधर के कथाकारों में श्री कव्यतुंगल सत्यनारायण ने अच्छी ख्याति अर्जित की। अन्य वर्तमान तेलुगू लेखकों में पी. वी. रेड्डी, रंगास्वामी गौड़ तथा एल. वेणुगोपाल के नाम उल्लेखनीय हैं।

7. कन्नड

कन्नड कर्नाटक में बोली जाती है जो दक्षिण भारत के बीच में है। कन्नड साहित्य का आरम्भ पाँचवी सदी ईस्वी के अभिलेखों से होता है, जिनपर संस्कृत का साफ प्रभाव है। 700 ई. में 'कविराज-मार्ग' लिखा गया जिसका डेढ़ सौ वर्ष बाद राष्ट्रकूट सम्राट नृपतुंग ने नया संस्कार किया। कन्नड साहित्य का यह पहला ग्रन्थ है। इस अलंकार-शास्त्र में अनेक पुराने साहित्यकारों का उल्लेख हुआ है।

600 से 1200 ई. के बीच कन्नड भाषा को संस्कृत से प्रभावित करने के प्रयत्न हुए। उस काल चम्पू शैली में यानी गद्य-पद्य मिले ऐतिहासिक काव्य लिखे गए। रामायण और महाभारत भी साहित्य में उतरे। कहा जाता है कि चम्पू शैली संस्कृत को कन्नड से ही मिली।

941 ई. में पम्प ने 'भारत' अथवा 'विक्रमार्जुनविजय' काव्य लिखा। पम्प जैन कर्नाटक का सबसे महान् साहित्यकार था। वह कन्नड का पहला कवि भी था। उसके द्वारा दिखाए मार्ग पर पीछे अनेक कवि चल पड़े। पोन्न, रन्न, नागचन्द्र आदि उसी परम्परा के कवि थे।

चवुण्डराज ने 10वीं सदी में कन्नड गद्य का पहला ग्रन्थ 'चवुण्डराज-पुराण' लिखा। कुछ ही काल बाद नागवर्मा ने अपनी 'कादम्बरी' और 'चंडोम्बुधि' लिखी।

12वीं सदी के मध्य एक नया साहित्यिक आन्दोलन चल पड़ा और कन्नड साहित्य शैली के क्षेत्र में एक क्रान्ति उठ खड़ी हुई। संस्कृत-बोझिल शैली की जगह जनपरक भाषा का उपयोग होने लगा। सरल शक्तिम कन्नड गद्य लिखा जाने लगा, जो 'वचन' साहित्य कहलाया। इस आन्दोलन का नेता वीरशैव सम्प्रदाय का प्रवर्तक बसवेश्वर था। अनेक वचनकारों ने उस काल अपने 'वचन' कहे। उनमें प्रधान बसव, अल्लम प्रभु और नारी सन्त अक्क महादेवी थे। सदी के अंत में हरिहर और राघवांक हुए। चौदहवीं सदी में विजयनगर साम्राज्य की संरक्षा में कन्नड साहित्य का शालीन युग शुरू हुआ। सभी सम्प्रदायों के कवियों ने कन्नड साहित्य का उस काल विकास किया। उस युग के कुमार व्यास और कुमार वाल्मीकि दोनों उच्चकोटि के कवि थे जिन्होंने साहित्य को भरा-पूरा। पुरन्दरदास और कनकदास ने अपनी कृतियों से कन्नड को समृद्ध किया। उनके गीत 'दासकूट' कहलाते हैं जो सभी कन्नड बोलने वालों को प्रिय हैं।

सत्रहवीं सदी में फिर एक बार प्राचीन शैली की ओर लौटने का प्रयास हुआ, पर अठारहवीं सदी में जो लोकनाटक शुरू हुए, उनसे उस आन्दोलन की गति रुक गई। उन्नीसवीं सदी के अंत में अनेक वैज्ञानिक ग्रन्थों का कन्नड़ में निर्माण हुआ और साधारण मानव के दुःख-सुख-सम्बन्धी रचनाएँ गीतों में प्रस्तुत होने लगीं। उन रचनाओं को 'त्रिपदी' कहते हैं, क्योंकि उनमें तीन पंक्तियाँ होती थीं। बीसवीं सदी के साथ कन्नड के वर्तमान युग का आरम्भ होता है। शीघ्र गुंडप्पा,

श्रीकंठैया, मास्ती, पंजे, बेन्द्रे, साली, आनंदकंद, सीतारमैया और मधुर चेन्मा जैसे कवियों ने कन्नड के साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया। फिर अन्य नए कवि भी उस साहित्य में यशस्वी हुए। उनमें प्रधान पुट्टप्पा, नृसिंहाचार्य, राजरत्न, शंकर भट्ट, विनायक और रसिक रंग प्रधान थे। यह प्रारम्भिक युग विशेषकर रूमानी कविता का था। उस पर अंग्रेजी की 'रोमान्टिसिज्म' का स्पष्ट प्रभाव था।

केरूर, पंजे और मास्ती ने कथा-साहित्य का आरम्भ किया। मास्ती उस दिशा में बड़ा सफल हुआ; उसका 'सुबण्ण' चरित-चित्रण का सुन्दर नमूना है। इसके अतिरिक्त कन्नड में कई दूसरे कहानीकार भी क्षमता से लिखने लगे–जैसे, आनन्द, आनन्दकन्द, कृष्णकुमार और कृष्णराव। राजरत्न ने भी अच्छी कहानियाँ लिखी हैं।

उपन्यास और नाटक का भी समारम्भ हुआ। पहले दूसरी भाषाओं, बंगला के उपन्यास आधार बने, फिर पुट्टना ने मौलिक सामाजिक उपन्यास लिखे। कारन्त, कृष्णराव, आनन्दकन्द, पुट्टप्पा और गोकाक ने कन्नड में अच्छे उपन्यास लिखे। हुइलगोल और केरूर ने सामाजिक नाटकों का आरम्भ किया। इस दिशा में सबसे सुन्दर प्रयत्न मैसूर के कैलाशम् ने किया। परन्तु समाज की आलोचना और सुधार को ध्यानगत रख नाटक जागीरदार (श्रीरंग) ने लिखे।

कन्नड के दूसरे नाटककार कारन्त, कस्तूरी और सम्स हैं। कामत, कृष्णराव, कुलकर्णी, बेन्द्रे और श्रीरंग ने एकांकी भी लिखे। कारन्त ने तो ओपेरा और छाया-नाटक भी लिखे।

कन्नड साहित्य ने इधर काफी उन्नति की है और नए-नए प्रयोग उसमें हो रहे हैं। प्रगतिशील साहित्य भी काफी मात्रा में आया है।

वर्तमान कन्नड साहित्यकारों में दिवसपति हेगड़े, टी. जी. प्रभाशंकर तथा बालचन्द्र जयशेट्टी के नाम उल्लेखनीय हैं।

8. मलयालम

मलाबार यानी मुंबई के अरब सागर और पश्चिमी घाट की पहाड़ियों के बीच रहने वालों की बोली मलयालम है। यह मुख्यतः केरल राज्य की भाषा है। मलयालम भी द्राविड़ भाषाओं में से एक है।

मलयालम का साहित्य कन्नड की ही भाँति काफी पहले का है। 9वीं सदी में ही राजाओं के अभिलेख मलयालम में लिखे जाने लगे थे परन्तु उसके साहित्य का आरम्भ शायद 14वीं सदी के बाद ही हुआ। 14वीं सदी में संस्कृत और मलयालम छन्दों की मिली-जुली शैली मिलती है। उस काल की मलयालम की शैली को मणि-प्रवालम् कहते हैं, क्योंकि उसमें संस्कृत और मलयालम दोनों की सुन्दरता मिली-जुली है। मलयालम में 15वीं सदी की 'चन्द्रोत्सव' नामक संस्कृत छन्द में लिखी एक समूची कविता मिली है।

शुरू के काल में दूसरे दक्षिणी साहित्यों की ही भाँति मलयालम में भी संस्कृत के रामायण, महाभारत, पुराणों आदि के अनुवाद हुए और एक लम्बे जमाने तक होते रहे। उसी काल में मलयालम में चम्पू का भी उदय हुआ, जिसमें गद्य-पद्य दोनों लिखे गए। महिषमंगल चम्पू शैली का सब से बड़ा मलयाली कवि है। उसका 'नैषध' चम्पू महाभारत से लिया गया है और 'राजरत्नावलीयम्' कोचीन के राजा की प्रशस्ति में लिखा गया है। परन्तु उसका 'कोटिविरहम्' लौकिक काव्य है जिसमें विरह की कथा वर्णित है।

अट्ठारहवीं सदी में मलयालम में दो प्रकार के साहित्यों का उदय हुआ। इनमें एक 'तुल्लल' कहलाता था, जो त्यौहारों पर गाया जाता था। इस प्रकार के गीतों का प्रधान गायक कुंचन नंपयार था। इसमें मुद्राओं के साथ-साथ गीतों का गायन भी होता था। विषय इसके संस्कृत के महाकाव्यों से लिए जाते थे परन्तु मलयाली जीवन उसमें खुलकर आता था। कुंचन नंपयार चोटी का व्यंग्यकार था और उसने अपने समय के समाज पर बड़े तीखे व्यंग्य किए। मलाबार का वह सबसे लोकप्रिय कवि है।

दूसरे प्रकार का मलाबारी साहित्य 'कथकली' में विकसित हुआ। कथकली वास्तव में नाटक साहित्य है। बहुत पहले से ही चाक्यार नाम के अभिनेता संस्कृत नाटक खेलते आए थे। परन्तु उनके खेल केवल ऊँचे वर्ग के लोग ही देख पाते थे। 17वीं सदी में देहात के नाटक कथकली नाम से साहित्य में आए। इनमें केवल मुद्राओं से भाव व्यक्त किए जाते हैं और उनसे सम्बन्धित शब्द या श्लोक परदे के पीछे से गाए जाते हैं। अधिकतर कथकली संस्कृत में ही हैं।

19वीं सदी में मलयालम का केन्द्र क्रन्नानोर बना। नए लेखक वेण्मणि नाम के कवि के निकट पहुँचे और मलयाली साहित्य को उन्होंने एक नई दिशा दी। पिता-पुत्र, नडुवथ, कातोली अच्युत मेनन, कुन्टूर नारायण मेनन, ओटोविल कुन्हिकृष्ण मेनन, चम्बत्तिल चात्तुकुट्टी मन्नडियार और नारीकवि पोट्टटेकाट, इक्काहु अम्मा उस शैली में विशेष प्रसिद्ध हुए। 19वीं सदी के पिछले काल केरल वर्मा वलियाकोपिल तम्पूरन ने मलयाली कवियों का नेतृत्व किया। उसका भतीजा राजराज वर्मा भी पण्डित और प्रसिद्ध कवि हुआ। इनके इलावा दक्षिण में त्रावणकोर राजकुल के केरल वर्मा, त्रिवेन्द्रम् के केशव पिल्ले, कोटारनिल शंकुण्णी और उल्लूर परमेश्वर ऐय्यर ने अपने काव्य द्वारा दक्षिणी मलाबार में नाम कमाया।

अब तक संस्कृत छन्द मलयालम भाषा साहित्य की विशिष्ट शैली बन चुके थे। इसी शैली में प्रतिभाशाली वेण्मणि ने अपनी मधुर कविताएँ लिखीं। उसकी कविताएँ अपने समय के व्यक्तियों और घटनाओं के सम्बन्ध में हैं। उसके सौतेले भाई कुंदकुट्टन तम्पुरन ने और अधिक लिखा, विशेषकर साधारण जनता के लिए।

इधर बीसवीं सदी के आरम्भ में साहित्य का मलयालम पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और पत्र-पत्रिकाएँ छपने लगीं, निबन्ध और उपन्यास लिखे जाने लगे। चन्तु मेनन ने 'इन्दुलेखा' और 'शारदा' और अप्पनेडुन्गडी ने 'कुन्दलता' नामक उपन्यास लिखे।

ग्रन्थ के प्रधान लेखक उस काल में वेनयिल कुन्हीरामन नायर,

राज अप्पन तम्पूरन, कुन्हन मेनन, अम्बाडी नारायन पोदुवाल और अच्युत मेनन हुए।

1925 में वल्लतोल ने रवि ठाकुर की शैली में कविताएँ लिखकर मलयालम को एक नई दिशा दी। संस्कृत के छन्द छोड़कर उसने प्राचीन मलयालम के छन्द अपनाए। रूप से अधिक महत्त्व उसने काव्य के कथ्य को दिया और साहित्य को सामाजिक सुधार कर साधन बनाया। वल्लतोल इस काल का सबसे महान् मलयाली कवि है और अपनी कविताओं के सामाजिक तत्त्व को कायम रखते हुए उसने मधुरता और सुन्दरता को खूब निभाया है। वल्लतोल ने रामायण भी मलयालम में अनुवाद की है।

सामाजिक सुधार को अपने साहित्य का विषय बनाने वालों में प्रधान कुमारन् आशन था, जिसकी अकाल-मृत्यु हो गई। केशव नाथ ने उस शैली की परम्परा कायम रखी। उल्लूर परमेश्वर अय्यर पुरानी काव्यधारा का प्रधान कवि था। बाद में उसने आलोचना को अपना विषय बनाया।

बाद के मलयाली कवियों और उपन्यासकारों में पनिक्कर का स्थान भी पर्याप्त ऊँचा है। शैली और रूप का निखार पनिक्कर की रचनाओं में पर्याप्त है। उन्नीकृष्णन् नायर ने रवि ठाकुर की कविताओं का मलयालम में अनुवाद किया और स्वयं भी सुन्दर मौलिक गीत लिखे। शंकर कुरुप की कविताएँ मलयाली तरुणों को बड़ी प्रिय हैं। के. के. राजा का स्थान भी मलाबार के कवियों में अच्छा है। चेंगनपुजा कृष्ण पिल्ले बड़ा उत्साही सामाजिक सुधारवादी साहित्यकार है और केवल समकालीन समस्याओं को काव्य का सही विषय मानता है। बालामणि अम्मा मलाबार की बड़ी प्रतिभाशाली कवयित्री हैं, जिसको प्रेरणा विशेषतः वल्लतोल से मिली है।

मलयालम ने इधर के दिनों में जो इतनी उन्नति की है और संस्कृत से अपना पल्ला छुड़ा स्वतन्त्र साहित्य का रूप धारण किया है, वह अधिकतर पिछले सामाजिक आन्दोलनों का परिणाम है। जिस लगन

और प्रतिभा से मलयाली साहित्यकार मलयालम की सेवा कर रहे हैं, वह सराहनीय है।

जीवित मलयालम साहित्यकारों में कथाकार एम. मुकुंदन तथा आनंद (पी. सच्चिदानंद) आदि से अधिक अपेक्षाएं हैं। अन्य मलयालम रचनाकार जो इधर सक्रिय हैं उनमें जी. गोपीनाथ, सी. कृष्ण नैय्यर तथा टी. एस. पौनामा प्रमुख हैं।

9. असमी

असम भारत का एक पूरबी राज्य है। प्राचीन काल में उसका नाम कामरूप और उसकी राजधानी का नाम प्राग्ज्योतिष था। प्राग्ज्योतिष इसलिए कि सबसे पहले प्रकाश वहीं आता था, यानी सूरज पहले वहीं निकलता था। ईसा की तेरहवीं सदी में जब अहोम जाति ने उस प्रदेश पर अधिकार कर लिया तब उसका नाम असम और उसकी भाषा का असमी पड़ा।

असमी भाषा का प्राचीनतम रूप असम के पुराने राजलेखों और सहजिया सम्प्रदाय की पुस्तक 'बौध गान ओ दोहा' में मिलता है। भाषा का यह रूप कई हज़ार साल पुराना है। साहित्य का उदय तेरहवीं सदी में हुआ जब राजा दुर्लभ नारायण के दरबारी कवि हेम सरस्वती ने तुकान्त पद्य में अपना 'प्रह्लादचरित' लिखा। प्रायः उसी काल हरिहर और कविरत्न सरस्वती हुए। दोनों कवि थे। चौदहवीं सदी के कविराज माधव कन्दली उस काल के सबसे बड़े कवि थे, जिन्होंने अत्यन्त सुन्दर असमी में समूची रामायण का अनुवाद किया। उस कवि की कृति 'देवगीत' में अवतारों की मधुर स्तुति है। असमी की पहली महान् कृति यही है।

इन राजकवियों के बाद असमी गीतकारों का रचना-काल आता

है। इन्होंने देश के लोक-गीतों का सम्बन्ध पौराणिक कथाओं से जोड़कर सुमधुर गीत लिखे। दुर्गाबर, पीताम्बर और मानकर ऐसे ही कवि है। इनमें श्रृंगार की प्रचुरता है। उस काल के ही असमी में लिखे झाड़-फूँक के गद्यात्मक सैकड़ों-हज़ारों मंत्र हैं।

असमी साहित्य का विशेष विस्तार भक्ति सम्प्रदाय के विस्तार के साथ-साथ हुआ। असम में वैष्णव धर्म 'एकशरण' धर्म कहलाया जिसमें वासुदेव-देवकीपुत्र की पूजा होती थी। इस दिशा में शंकरदेव का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अनेक पद्य-कथाएँ लिखकर उसने असमी की भारती भरी। उसकी सुन्दतम् कृति 'कीर्तन घोषा' है, जिसमें अत्यन्त सुकुमार और मधुर भाषा में तीस गेय कविताओं में विष्णु लीलाएँ वर्णित हैं। शंकरदेव ने असमी अंकीय नाट (एकांकी नाटक) और बड़गीत (भक्ति-गान) का भी प्रारम्भ किया। इस प्रकार के नाटक असमी के अपने हैं और आज भी गाँवों में खेले जाते हैं। इनका विषय पौराणिक होता है।

असमी वैष्णव आन्दोलन का दूसरा महान् व्यक्ति उसी शंकरदेव का शिष्य माधवदेव है। उसकी प्रधान रचना अत्यन्त मधुर और गेय छंदों में लिखी 'नामघोषा' (हज़ारी-घोष) है। उसमें कृष्ण-सम्बन्धी तरल रस से सराबोर अनेक कविताएँ है। माधवदेव का यश विशेषतः बड़गीतों से फैला। उनमें कृष्ण और गोपियों की लीलाएँ अद्भुत भावराग से लिखी गई हैं।

वैष्णव आन्दोलन का सबसे प्रतिभावान रचयिता राम सरस्वती हुआ। उसने महाभारत का असमी में अत्यन्त सुन्दर अनुवाद किया। श्रीमद्भागवत, हरिवंश और दूसरे पुराणों के अनेक काव्यबद्ध असमी अनुवाद भी तभी हुए जिनसे वैष्णव-आन्दोलन और असमी भाषा को बड़ा बल मिला।

असमी गद्य का निर्माण अहोम जाति के संपर्क से हुआ। अहोम शान जाति की एक शाखा थे और तेरहवीं सदी के आरम्भ में उन्होंने ब्रह्मपुत्र की घाटी पर अधिकार कर लिया था। अहोमों ने स्थानीय असमी

भाषा सीख ली और उसी में वे अपना राज-काज करने लगे। असमी अहोमों की विशेष देन 'बुरंजी' हैं जो एक प्रकार के इतिहास हैं। इनका अर्थ है 'अजानों को सुजान बनाने का भण्डार'। शुरू की बुरंजियाँ अहोम पुरोहितों (देवधई) ने अहोमी में लिखीं, फिर राजलेखकों द्वारा वे असमी में भी लिख ली गईं। ये घटनाओं का सरस वर्णन करती हैं और असमी गद्य का प्रारम्भ करती हैं।

अठारहवीं सदी के आरम्भ में राजा रुद्रसिंह ने शाक्त साहित्य को सुरक्षा दी। उस साहित्य के प्रधान रचयिता अनन्त आचार्य, रुचिनाथ कन्दली, मधुसूदन मिश्र, रामचन्द्र बड़पात्र गोहाईं आदि थे। पर शाक्त कवियों की रचनाएँ वैष्णवों का सा रस न बरसा सकीं।

उसी काल धर्म-निरपेक्ष असमी साहित्य का निर्माण भी शुरू हुआ। रुद्रसिंह के राजकवि कविराज चक्रवर्ती ने 'गीत गोविन्द' का अनुवाद किया और शाकुन्तल-काव्य में लोक-साहित्य की कामकला और चन्द्रकेतु की ललित कथाएँ लिख डालीं।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में ही बर्मियों ने असम पर अधिकार कर उसकी जनता पर भयानक अत्याचार किये, पर शीघ्र ही असम फिर अंग्रेजों के अधिकार में आया और देश की काया पलट गई। इन दोनों विदेशी शासनों का प्रभाव देश की भाषा पर भी पड़ा। अंग्रेज़ों ने शासन में बंगालियों को महत्व दिया, राजभाषा बंगला कर दी और असमी सभी प्रकार से अधोमुखी हुई। असमी स्कूलों में 1873 ई. तक असमी के लिए स्थान न था, उसकी जगह बंगला ही पढ़ाई जाती रही।

असमी का पुनरुद्धार ईसाई मिशन ने किया। बाइबिल के अनुवाद के साथ-साथ उसने 'ओरुणोदय संवाद' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला जिसमें अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित असमी तरुण अपनी असमी भाषा को निखारने-संवारने लगे। मिशन ने स्कूलों की पाठ्य पुस्तकें व्याकरण, विज्ञान आदि के ग्रन्थों को देश की भाषा में प्रकाशित करना शुरू किया। गद्य की एक नई अविरल धारा अब असमी में बह चली। इस नई धारा के लेखक आनन्दराम धेकियल फूकन थे, पर असमी की

गद्य-धारा के विस्तार में मिशन और उसके सेवक ब्राउन और ब्रोन्सन के नाम असमी के उन्नायक सदा आदर के साथ लेते रहेंगे।

उसी काल के हेमचन्द्र बरुआ उन थोड़े-से लोगों में हैं जिन्होंने अपने पुराणपंथी समाज के दायरे से निकलकर अंग्रेजी सीखकर पश्चिमी साहित्यों की छाया में असमी को भरा-पूरा। हेमचन्द्र ने नाटक, उपन्यास, कोष, पाठ्य ग्रन्थ सभी लिखे और अपने प्रहसनों में तो उसने समाज के ढकोसलों का खासा भंडाफोड़ किया। उसके 'कनिकार कीर्तन' में अफीमचियों का व्यंग्य है और 'बाहिरे रोंग-सोंग भितेरे कोआ-भतूरी' में धार्मिक गुरुओं के विलास-व्यसनों का भंडाफोड़ है। हेमचन्द्र के मित्र गुणाभिराम बरुआ ने सरस शैली में असमी की पहली जीवनी लिखी। सन् 1885 में उसने 'असमबन्धु' नामक एक मासिक पत्र निकाला।

पर असमी का विशेष कल्याण चार वर्ष बाद प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'जोनकी' ने किया। इसे कलकत्ते के असमी विद्यार्थियों ने निकाला। साहित्य और समाज-सम्बन्धी विचारों को इस पत्रिका ने एक सर्वथा नया, गम्भीर, निर्भीक और क्रान्तिकारी रुख दिया। गद्य-पद्य दोनों ही इसमें प्रकाशित हुए।

असमी गद्य पर अंग्रेजी रोमैंटिक कवियों का भी खासा प्रभाव पड़ा। उसी प्रभाव की छाया में मुक्त छन्द में भोलानाथ दास ने असमी में एक समूचा महाकाव्य ही लिख डाला। वर्तमान असमी को महान् कृतियाँ लखमीनाथ बेजबरुआ (1868-1938) ने दीं। भोलानाथ कवि, नाटककार पण्डित और पत्रकार सभी कुछ थे। अपने प्रहसनों में उन्होंने असमी जीवन की मूर्खताओं का भंडाफोड़ किया। उनकी यथार्थवादी कहानियाँ 'सुरभि', 'साधुकथार कुकी' और 'जोनबीड़ी' में संग्रहीत हैं।

हेमचन्द्र गोस्वामी ने ऐतिहासिक निबन्ध लिखे और प्राचीन असमी हस्तलिपियों की खोज की। चन्द्रकुमार अगरवाल (जन्म 1867) की गेय कविताएँ मधुर और सरस हैं। साप्ताहिक 'असमिया' उन्हीं का चलाया पत्र है। पद्मनाथ गोहाईं बरुआ ने बंगला को हटाकर असमी को स्कूलों में पढ़ाने का भागीरथ प्रयत्न किया। उनकी लिखी पाठ्य पुस्तकों ने

असमी में नए प्राण फूँके।

इसी काल रजनीकान्त बरदलाई ने अपने उपन्यास लिखे। उनकी कृतियाँ अधिकतर ऐतिहासिक हैं। ब्रह्मसमाजी कमलाकांत भट्टाचार्य ने अपनी गद्य और पद्य रचनाओं में नयी सामाजिक चेतना के बीज बोये। पुरानी रूढ़ियाँ उनकी चोट से छिन्न-भिन्न हो गईं। सत्यनाथ बोरा ने 19वीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी के आरम्भ में सुन्दर निबन्ध लिखे और हितेश्वर बड़बरुआ ने सुन्दर सानेट और दूसरी कविताएँ लिखीं।

रघुनाथ चौधरी की कविताएँ असम की प्रकृति के राग ध्वनित करती हैं और अम्बिकागिरी रायचौधरी की राजनीति के। मफीजुद्दीन अहमद ने अपने कविता-संग्रह 'ज्ञानमालिनी' में रहस्यवादी भावधारा का सृजन किया है। प्रकृति की अनुपम गायिका नलिनीबाला देवी हैं। दण्डीनाथ कलिता की कविताएँ व्यंग्यात्मक हैं और आचार-विचार की रूढ़ियों पर गहरी चोट करती हैं। जतीन्द्रनाथ दुआरा अंग्रेज़ रोमैंटिक कवियों से प्रभावित हैं। भावनात्मक निराशावाद उनकी कविताओं की आत्मा है। प्रेम और सौंदर्य उनके विशेष आराध्य हैं। असमी साहित्य ने प्रबल प्रगतिशील धारा भी अपनाई। शैलधर राजखोवा, डिम्बेश्वर नियोग, बिनंदाचंद्र बरुआ आदि की कविताओं में स्वदेश-प्रेम खुलकर बह चला है। सम्भवतः देश के किसी दूसरे राज्य ने अपने साहित्य को जनांदोलनों के इतने निकट न खींचा जितना असम ने। पिछले काल के कवियों ने अपनी काव्य-कृतियों में जनता की दुःख-दशा का खूब ही बयान किया।

स्वतंत्रता के देशव्यापी आन्दोलन ने जैसे असमी साहित्य को भरा-पूरा, वैसे ही उसके स्वांतत्र्य-प्रेम ने असमी छंद और भाषा को भी संस्कृत की दासता से छुड़ाकर जनता के निकट ला रखा। उसकी कहानियों में विह्वल जन-जीवन इठलाकर बहा और नई चेतना ने नई मंजिलें तय कीं। असमी साहित्यकारों में अतुलनन्दा गोस्वामी, निर्मलप्रभा बारदोलई एवं बी. के. भट्टाचार्य के योगदान उल्लेखनीय हैं।

10. उड़िया

बंगला का असमी और उड़िया दोनों पर गहरा प्रभाव है, पर दोनों ने उसके योग से सक्रिय होने के पश्चात् उसके बंधन से मुक्त होकर अपनी स्वतंत्र काया का सृजन किया। परन्तु निःसन्देह बंगला का उन पर प्रभाव उनके रूप आदि पर अपेक्षाकृत पीछे का ही है, कारण कि कम-से-कम उड़िया का उदय तो प्रायः छठी-सातवीं सदियों में ही हो गया था। नैपाल से मिली ताड़पत्र की हस्तलिपियों से पता चलता है कि अनेक कवियों और धर्म-गुरुओं ने तभी उड़िया में पद और दोहे लिखने शुरू कर दिये थे। इनके पद 'बौध गान ओ दोहा' में संगृहीत हैं। इनका सम्बन्ध बौद्ध तंत्रों से है।

पुरी के मन्दिर में मन्दिर का इतिहास जो ताड़पत्रों पर लिखा हुआ रखा है, उससे ग्यारहवीं-बारहवीं सदी के उड़िया गद्य का आभास मिलता है। अगली सदी का उड़िया गद्य भुवनेश्वर राजा नरसिंह देव के शिलालेख में सुरक्षित है। तेरहवीं सदी में उस गद्य के सुगठित रूप के दर्शन होते हैं। नारी-त्यौहारों की कहानियों 'ओशा' और उड़ीसा के राजकुलों के इतिहासों में भी वह गद्य सुरक्षित है। तेरहवीं-चौदहवीं सदियों की काव्य-धारा तो आधुनिक उड़िया-सी लगती है। बच्चा दास का 'कलश-चौंतीसा' चौदहवीं सदी की कृति होती हुई भी श्वास-उच्छ्वास में सर्वथा आधुनिक है। उसी सदी के सारला दास का महाभारत भी असामान्य काव्य है।

इस सारला दास और उड़िया के सबसे महान् कवि उपेन्द्र भंज (अठारहवीं सदी) के बीच का काल उस साहित्य का मध्यकाल है। इस बीच कम से कम तीस ऐसे कवि हुए जिनका उड़िया साहित्य में अपना स्थान है। इनमें जगन्नाथ दास ने अपना 'उड़िया भागवत' और बलराम दास ने अपनी रामायण लिखकर उस भाषा के साहित्य पर अमिट प्रभाव छोड़ा है।

उड़िया भाषा की एक विशेषता यह है कि भारत की अन्य भाषाओं

की भाँति उसमें बोलियाँ नहीं हैं, कई करोड़ जनता की वह अकेली भाषा है। उसमें प्रयुक्त होने वाले सैकड़ों छन्द भी उसकी अपनी विशेषता है। साधारणतः उड़िया साहित्य के इतिहास को हम इसके प्रधान कृतिकारों के नाम पर इस प्रकार पाँच काल-भागों में बाँट सकते हैं– प्राचीन काल (1000 से 1500 ई.), जगन्नाथ दास काल (1500–1700 ई.), उपेन्द्रभंज काल (1700–1850 ई.) और वर्तमान काल।

प्राचीन काल–इस काल की कुछ कृतियों का निर्देश ऊपर किया जा चुका है। 'बौध गान ओ दोहा', 'मदल पंजी', 'राजा बलभद्र की प्रणय-कहानी', मर्कन्द दास की 'केसब कोइली' आदि इसी काल की हैं। 'केशब कोइली' चौंतीस दोहों का एक गीत है जिसे प्रत्येक उड़िया विद्यार्थी आज भी कंठस्थ करता है। सारला दास और नीलाम्बर दास भी प्राचीन काल के ही हैं। नीलाम्बर दास ने महाभारत का पद्यात्मक अनुवाद किया और उड़िया पद्मपुराण रचा। महादेब दास ने अपने 'कार्तिका-माहात्म्य' में कार्तिकी पूजाओं का बखान किया।

जगन्नाथ दास काल में चैतन्य महाप्रभु उड़ीसा पधारे। उनके पुरखे उड़ीसा के ही ब्राह्मण थे। उनके द्वारा रचित भागवत आज भी प्रत्येक गाँव के भागवत-घर में रखा और पूजा जाता है। ग्वाल वंश के अच्युतानंद दास ने उसी सोलहवीं सदी के आरम्भ में हज़ारों आध्यात्मिक पद लिखे। तभी के जनार्दन दास की 'गोपी-भाषा' कृष्ण के विरह में गोपियों की स्थिति का बयान करती है। बलराम दास और हलधर दास अपने रामायण के छन्दशः अनुवादों के लिए प्रसिद्ध हैं। दीनकृष्ण दास ने भी राधा-कृष्ण सम्बन्धी अनेक पदों और 'रस कोल्लोल' की रचना की। विश्वनाथ कुन्तिया ने (17वीं सदी) 'विचित्र रामायण' रची जो उड़ीसा में बड़ी लोकप्रिय है। राजा धनंजय भंज ने 'रघुनाथ-बिलास' आदि अनेक काव्य-ग्रन्थों की रचना की। धारकोटे के जयसिंह और कृष्णसिंह ने भी अनेक प्रकार से इस काल उड़िया-साहित्य की सेवा की।

उपेन्द्रभंज काल के प्रधान कवि उपेन्द्र भंज हैं। उन्होंने कोड़ियों काव्य ग्रन्थ लिखे, जिनमें 'बैदेहिस-बिलास', 'कलकौतुक' मुख्य हैं।

इनकी कृतियों में छन्द की कलाबाजी बहुत है। उनमें अनेक प्रकार के चमत्कारों का प्रयोग हुआ है। उनके गीत 'चौपदी' कहलाते हैं। उस काल के कवियों में प्रधान उपेन्द्र के पितामह घनभंज, तेलुगू कवि गोपाल, सदानन्द कबिसूर्य, सामन्त सिंगार आदि हैं। सामन्त सिंगार की 'विदग्ध चिन्तामणि' कृष्ण-प्रणय का मनोहर काव्य है। उसी काल भक्तचरण, पीताम्बर दास, भीम धीबर (मल्लाह), बिस्वम्भर दास और बलदेव रथ कविसूर्य, केशब पट्टनायक, दाशरथी दास और जदुमणि महापात्र ने अपनी विविध काव्य-रचनाएँ कीं। रामदास, राजा पीताम्बर राजेन्द्र (18वीं सदी) और कहु दास भी उसी काल के कवि हैं। तभी राजा निशंकराय की रानी ने अपनी प्रसिद्ध प्रणय-काव्य कथा 'पद्माबती-अभिलाषा' लिखी। कृष्णचरण पटनायक और गोपाल कृष्ण पटनायक की कविताएँ और पद्य-रचनाएँ उस काल विशेष समादृत हुईं। उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं के आरम्भ में गंजाम के भुवनेश्वर कबिचन्द्र ने अपने 'सीतेश बिलास' और 'बासुदेब बिलास' लिखे। अरखित दास के 'शरीर भेद' और पिण्डिक के 'बसन्त-रास' ने भी बड़ी ख्याति पाई। ब्रजरत्न बदजेन बसन्त ने प्रायः पहली बार उस साहित्य में अपने धेनकानल के राजा और मरहठों के बीच युद्ध का 'समर तरंग' में वर्णन कर यथार्थवादी काव्य-धारा का श्रीगणेश किया।

राधानाथ-काल उड़ीसा पर अंग्रेजों के अधिकार से प्रारम्भ होता है। उड़िया में भी असमी की तरह ईसाई मिशनों की सहायता से गद्य को पर्याप्त बल मिला। 'उत्कल दीपिका' नामक साप्ताहिक पत्र का तभी प्रकाशन आरम्भ हुआ और आधुनिक उड़िया साहित्य ने अपनी नई मंजिलें तय करनी शुरू कीं। इस पत्र के जरिये इसके सम्पादक रायबहादुर गौरीशंकर राय उड़िया साहित्य और संस्कृति के लिए वर्षों तक लड़ते रहे।

इसी काल राधानाथ ने मुक्त छन्द में अपना काव्य 'महाराजा' लिखा। फकीर मोहन सेनापति ने अनेक रूप से गद्य और पद्य का साहित्य भरा। उन्होंने अनेक उपन्यास भी लिखे। उस काल के सैकड़ों साहित्यकारों

के बीच गोविन्द सूरदेव का नाम उल्लेखनीय है। वे काव्यकार और गीतकार दोनों थे। उनके अनेक गीत उड़िया में अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं।

आधुनिक उड़िया साहित्य भी अन्य भारतीय साहित्यों की ही भाँति पश्चिम के सम्पर्क से भरा-पूरा है। उसमें भी उपन्यास, नाटक, काव्य, कहानी आदि का सृजन अबाध गति से हो रहा है। आजादी के आंदोलन में उसके कवियों ने भी अपने गीतों से स्वर भरे। वर्तमान युग की सामाजिक प्रेरणाएँ उड़िया साहित्यकारों का भी दिशा-संकेत कर रही हैं।

उड़िया साहित्यकारों ने हिन्दी और बंगला की प्रगतिशील धारा का अनुसरण कर साहित्य-सृजन किया जिसमें उड़िया की राजनीतिक-सामाजिक समस्याओं तथा आम जनता की पीड़ा ने सशक्त अभिव्यक्ति पाई।

11. उर्दू

उर्दू भारत और पाकिस्तान की भाषा है। भारत की तो वह बोली जाने वाली ज़बान भी है और पाकिस्तान की वह राष्ट्रभाषा है। पाकिस्तान में यद्यपि वह बोली कहीं नहीं जाती है पर समझी हर जगह जाती है। भारत और पाकिस्तान को छोड़ कहीं और वह बोली-समझी भी नहीं जाती। हिन्दू-मुसलमान दोनों कौमों ने उर्दू को समान निष्ठा से बनाया-सजाया है। दोनों ने उस ज़बान में अपनी उत्तम रचना की है। जैसे पठान शिल्प-कला और मुगल कलम हिन्दू-मुसलमानों की सम्मिलित साधना के परिणाम हैं, वैसे ही उर्दू भी दोनों के सम्मिलित प्रयास का प्रतिफल है।

उर्दू, हिन्दी खड़ी बोली की ही शैली है, पर वह शैली केवल साहित्य की ही नहीं, सांस्कृतिक परम्परा की भी है। जिन भाषाओं की क्रियाएँ

एक होती हैं वे वस्तुतः एक ही भाषा की शाखाएँ या शैलियाँ होती हैं। इससे हिन्दी और उर्दू, दोनों भाषा की दृष्टि से एक ही हैं, दोनों में अन्तर मात्र लिखावट की दृष्टि से है। हिन्दी देवनागरी लिपि में बायें से दाहिने को लिखी जाती है, उर्दू अरबी-फारसी लिपि में दाहिने से बाएँ को। उर्दू शब्द का अर्थ है 'शिविर' या सेना का पड़ाव। यह शब्द तुर्की का है।

अमीर खुसरू फारसी का पहला महान् लेखक था जिसने हिन्दुस्तानी (हिन्दी या उर्दू) में लिखा। उसकी उस छन्द-शैली को 'रेखता' कहते हैं। इसी से उर्दू को साधारणतः रेखता कहने लगे। उर्दू साहित्यिक शैली विशेषता दकन में बनी, जहाँ मुसलमान सन्त उसी ज़बान में उपदेश देने लगे थे। उस ज़बान में लिखे दकनी सय्यद मुहम्मद बन्दानवाज़ गीसूदराज (पन्द्रहवीं सदी के आरम्भ में) की करीब सौ रचनाओं का हवाला मिलता है। इसी प्रकार अनेक दूसरे सूफी सन्तों ने दकन, मालवा, गुजरात–हिन्दुस्तान में सर्वत्र उर्दू में अपनी रचनाएँ कीं।

गोलकुंडा के कुतुबशाही राजकुल की संरक्षा में उर्दू खूब फली-फूली। मुहम्मद कुली कुतुबशाह ने हैदराबाद को बसाया और हैदराबाद तब से उर्दू का दकनी मरकज़ बन गया। शाह ने स्वयं उर्दू में अपना विशाल 'कुल्लियात' लिखा जो रोज़मर्रा के आम जीवन का चित्र उपस्थित करता है। उसके अगले दोनों उत्तराधिकारियों ने भी उर्दू में ही अपनी रचनाएँ कीं।

इस काल के अन्य प्रसिद्ध कवियों में प्रधान मुल्ला वजही था। वह सुल्तान कुली कुतुबशाह का राजकवि था। उसका प्रसिद्ध मथनवी कुतुब मुश्तरी शाहज़ादे के प्रणय-कृत्यों का बयान करता है। उसका 'सब रस' सूफी कलामों की सुन्दर गद्य रचना है। उसी काल अब्दुल्ला 'कुतुबशाह' का दरबारी कवि गव्वासी हुआ। उसने अनेक अरबी-फ़ारसी कहानियों को मधुर उर्दू में लिखा। सत्रहवीं सदी के बीच बड़ी सादी और सुथरी शैली में इब्न-ए-निशाती ने अपना मथनवी 'फूलबान' लिखा।

इसी प्रकार बीजापुर के आदिलशाही सुल्तानों ने भी अपने दरबार में अनेक शायरों को अपनी संरक्षा दी। इब्राहिम आदिलशाह स्वयं

असाधारण कवि था और भारतीय संगीत का पारदर्शी होने से 'जगद्गुरु' भी कहलाता था। वहीं तालीकोटा की प्रसिद्ध लड़ाई का बयान 'फ़तहनाम-ए-निज़ामशाह' हसन शौक ने लिखा। रुस्तमी ने वहाँ उर्दू का पहला वीरकाव्य 'ख़वरनामा' लिखा। आदिलशाही सल्तनत का सबसे महान शायर नुसरती हुआ जिसने मधु-मालती की प्रणय-कथा अपने 'गुल्शने-इश्क़' में लिखी। उसका 'गुल्दस्त-ए-इश्क़' उसकी फुटकर गेय कविताओं का संग्रह है।

दकन का सबसे महत्त्वपूर्ण कवि शम्सुद्दीन वलीउल्लाह वली (मृत्यु 1741 ई.) था। उसका पद्य तीन प्रकार से सम्पन्न हुआ—शुद्ध दकनी, उर्दू दकनी में और शुद्ध उर्दू में। उसके शागिर्दों से सारा दकन एक बार भर गया था।

वली के दिल्ली आने पर उत्तर भारत में उर्दू का मरकज़ दकन से उत्तर जा पहुँचा। अनेक दकनी शायर—फ़िरक़ी, फ़करी, आज़ाद—वली के बाद दिल्ली पहुँचे। सादी ज़बान में सूफ़ी विचार प्रकट किये जाने लगे। हातिम इसी परम्परा का शायर था। मिर्ज़ा जानेजानान 'मज़हर' भी बड़ा सोफियाना शायर था, ज़बान बड़ी फसीह लिखता था। उसे उर्दू का चौथा पाया कहा गया है। बाकी तीन पाये मीर, सौदा और दर्द थे।

उस काल (अठारहवीं सदी) का सबसे महान् उर्दू कवि मीर तक़ी मीर था, आगरे का रहने वाला। उसके बराबर ग़ज़ल कहने वाला उर्दू भाषा में नहीं हुआ। मीर ने चालीस हज़ार से ऊपर लाइनें लिखी हैं। उसके संग्रह 'शोल-ए-इश्क़' और 'दरिया-ए-इश्क़' दर्द और इश्क़ का लासानी इज़हार करते हैं।

मुहम्मद रफ़ी सौदा (1713-80) ने नज़्म में पहले-पहल ओजस्वी व्यंग्य लिखे। सौदा और ज़ौक उर्दू के सबसे बड़े कसीदा लिखने वाले हैं। उनकी रचनाओं में क़सीदे, व्यंग्य, ग़ज़लें, मरसिये सभी हैं, कुल करीब 10,000 लाइनों से ऊपर। मीर दर्द सूफ़ी था, इसी से उसने अधिकतर मज़हबी नज़्में ही लिखी हैं। बचपन से ही उसने धार्मिक कविताओं का दामन पकड़ा और एक से एक सुन्दर कविताएँ लिखता

चला गया।

मीर हसन मथनवी लिखने में अत्यन्त कुशल था। उसका मथनवी 'सिहसल बयान' पर्याप्त विख्यात हुआ। उर्दू नज़्म का यह सबसे सुन्दर फ़साना है। इसमें शाहज़ादा बेनज़ीर और बद्रे मुनीर की प्रणय-कथा कही गई है। इसकी ज़बान बड़ी सादी है।

गुलाम हमदानी मुसहफ़ी (1750-1824) 'लिरिक' लिखने में सिद्धहस्त था। उसकी रचनाओं की आठ जिल्दें हैं। उसने तीन सौ उर्दू शायरों का फ़ारसी में संग्रह तैयार किया।

इंशाअल्ला खां 'इंशा' अपने हास्य और व्यंग्य के लिये प्रसिद्ध हो गये हैं। वली मुहम्मद नज़ीर (1740-1830) उर्दू के सुन्दरतम शायरों में गिना जाता है। उसकी कविताएँ बचपन, गिलहरी, कौए और हिरन-सम्बन्धी और पतंग तथा बुलबलों की लड़ाई-सम्बन्धी बड़ी मार्मिक हैं। उसकी ज़बान की सादगी उर्दू साहित्य के किसी शायर में नहीं है।

उस काल के अन्य शायरों में प्रधान हैदरअली आतिश, इमामबख़्श नासिख़, अनीस और सलामत अली दबीर हैं। आतिश प्रकृति का गायक था, नासिख़ लफ्ज़ों का जादूगर था। आतिश उर्दू भाषा के सुन्दरतम लेखकों में गिना जाता है। उसने दो दीवान छोड़े हैं जिनमें 40,000 से ऊपर पंक्तियाँ हैं। नासिख़ की नज़्मों की तीन जिल्दों में 'दफ्तर-ए-परेशाँ' मधुरतम है।

उर्दू का वर्तमान युग सन् 1857 के गदर से शुरू होता है। अब तक फ़ारसी का बोलबाला रहा था, उर्दू उसकी चेरी मात्र थी, पर अब वह अपनी ज़मीन पर खड़ी हुई। हिन्दुस्तान की ज़बानों में उर्दू अब हिन्दी के साथ प्रधान ज़बान बनी। अनीस और दबीर की रचनाओं ने ज़ौक़, अमीर, दाग़, हाली, सर सैयद, ग़ालिब और इक़बाल के लिए राह बना दी थी। ग़ालिब और इक़बाल इन सबमें महान थे। अनीस और दबीर ने ही अधिकतर आधुनिक उर्दू नज़्म को लोकप्रिय बनाया।

मुहम्मद इब्राहीम 'ज़ौक़' लखनऊ के बाद के दिल्ली मरकज के शायरों में प्रथम महत्वपूर्ण शायर था। उसकी अधिकतर रचनाएँ ग़दर

में नष्ट हो गई। फिर भी आज़ाद आदि उसके शागिर्दों की खोज से कोई 10,000 पंक्तियाँ मिल गईं। ज़ौक़ ने क़सीदाकारी को आख़िरी मंजिल पर पहुँचा दिया।

उर्दू कवियों में सबसे महान् असदुल्ला खाँ 'ग़ालिब' (1797-1860) था। वैसे अधिकतर उसने लिखा फ़ारसी में, पर जो कुछ वह उर्दू में छोड़ गया है, वह लामिसाल है। उसके गद्य और पद्य दोनों ही मिलते हैं। दीवान के अतिरिक्त उसके ख़तों की भी दो जिल्दें हैं—'उर्दू-ए-मुअल्ला' और 'ऊर्दू-ए-हिन्दी'।

मुहम्मद मोमिन ख़ाँ 'मोमिन' (1800-1851) ने ज्योतिष और हिकमत पर पुस्तकें लिखी हैं पर शायर भी वे काफ़ी ऊँचे तबके के थे। उन्होंने ग़ज़ल और क़सीदे लिखे। उनका एक मथनवी भी है, 'मथनवी-ए-जिहादिया'।

अमीर अहमद मीनाई और नवाब मिर्ज़ा खाँ 'दाग' रामपुर के दरबार के शायर थे। अमीर आलिम थे, और दाग़ शायर। अमीर की महारत क़सीदाकारी में थी, दाग़ की 'लिरिक' में। अमीर के दीवानों के नाम थे—'मीरातुल ग़ैबा' और 'सनमख़ान-ए-इश्क़'। दाग़ के दीवानों के नाम हैं—'गुल्ज़ार-ए-दाग़', 'आफ्ताब-ए दाग़', 'फ़र्याद-ए दाग़', 'मेहताब-ए-दाग़' और 'यादगार-ए-दाग़'।

उर्दू के अलीगढ़ी आन्दोलन का केन्द्र सर सैयद अहमद खाँ का मुस्लिम कालेज था, जो बाद में मुस्लिम यूनिवर्सिटी बना। उस आन्दोलन के परिणामस्वरूप ऊँचे तबके के शायर और लेखक हुए। सर सैयद अहमद, नवाब महसिनुल्मुल्क, मौलवी चिराग़ अली, मुहम्मद हुसेन आज़ाद, अल्ताफ़ हुसेन हाली, मौलवी नजीर अहमद, वकाउल्लाह, हसरत मोहानी और शिबली नूमानी उन्हीं में थे। हाली के 'मुसद्दस' और 'शेर-ओ-शायरी' प्रसिद्ध हो चुके हैं।

बाद के उर्दू के शायरों में सबसे महान् सर मुहम्मद इक़बाल हो गए हैं। उनकी अधिकतर शायरी दर्शन से सम्बन्ध रखती है—'बांग-ए-दरा', 'बालि जिब्रील', 'जावीदनामा', रमूज़-ए-ख़ुदी', 'दर्बे-कलीम', 'ज़बूर-ए-

अज़म' उनकी अमर कृतियाँ हैं। हाल के जीवित उर्दू शायरों में प्रधान मजाज़, सागर, फ़ैज़, जोश मलीहाबादी, रघुपति सहाय फ़िराक़, वामिक़, सरदार जाफ़री आदि हैं।

उर्दू के कहानीकारों में सबसे महान् प्रेमचन्द थे जो हिन्दी के भी सर्वोत्तम उपन्यासकार-कहानीकार थे। मंटो का स्थान उर्दू के कहानीकारों में अप्रतिम हैं। राजेन्द्रसिंह बेदी, कृशनचन्दर, चग़ताई आदि भी उर्दू के उत्कृष्ट कहानीकार हुए।

जैसा आरम्भ में कहा गया, हिन्दी और उर्दू में परम्परा के अतिरिक्त बस लिखावट का फ़र्क है। उर्दू शायरों की कृतियों को देवनागरी लिपि में प्रकाशित किया जाने लगा है। एक लिपि हो जाने पर हिन्दी और उर्दू सर्वथा समान हो जाएँगी।

वर्तमान उर्दू साहित्यकारों में शफीक फरहद, खुर्शीद आलम एवं मुहम्मद युनुस के नाम प्रसिद्ध हैं।

12. पंजाबी

पंजाबी प्रायः डेढ़ करोड़ जनता की ज़बान है। यह जनता अब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बँट गई है, पर है यह अब भी पाकिस्तान की जनता की भाषा। यद्यपि पाकिस्तान की राष्ट्रीय भाषा उर्दू बना दी गई है पर जनता की बोलचाल की भाषा वहाँ बहुत हद तक पंजाबी ही है। पंजाबी को हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख सभी ने बढ़ाया है। सिक्खों के तो धार्मिक ग्रन्थ 'गुरुग्रन्थ साहब' के अनेक अंश उसमें और पंजाबी लिपि गुरमुखी में लिखे हैं। पंजाबी की उत्तरी, मध्यवर्ती और पश्चिमी शाखाओं ने साहित्यिक शैलियाँ विकसित कीं।

पंजाबी साहित्य बहुत समृद्ध नहीं, यद्यपि उसमें दूसरी प्रादेशिक

भाषाओं की तरह ही लोक-कथाओं और लोक-गीतों की कमी नहीं है। उस भाषा को विशेष मर्यादा सिक्खों ने उसे अपनी धार्मिक ज़बान बना कर दी। एक काल तक सिक्ख उन्नीसवीं सदी के बीच पंजाब की राजनीति पर हावी रहे, तब उन्होंने अपनी राजकीय भाषा भी पंजाबी को ही बनाया। बाद में भी सिक्ख रियासतों ने उसे विशेष आदर दिया। 1970 के दशक में भारतीय पंजाब को बाँटकर पंजाबी भाषाभाषियों के लिए एक पृथक् पंजाबी सूबा बना देने का आन्दोलन चला। उसे कुचलने का प्रयास व्यर्थ हुआ और अन्ततः पंजाब और हरियाणा नाम के दो राज्य बन गए। हरियाणा हिन्दी भाषाभाषी है और यहाँ के लेखक हिन्दी और हरियाणवी दोनों के विकास में लगे हैं।

पंजाबी साहित्य का जन्म और विकास सिक्खों की ही सक्रिय साधना से हुआ। पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदी में गुरु नानक हुए, जिन्होंने सिक्ख-सम्प्रदाय की स्थापना की। अपनी शिक्षा का माध्यम उन्होंने पंजाबी को ही बनाया। सिक्खों का धर्म अभिजात नहीं, जनता का धर्म था और उसके प्रचार के लिए जनता की ज़बान की ही आवश्यकता थी। उसी ज़बान का पंजाबी के गुरु नानक ने जनता तक अपनी आवाज़ पहुँचाने के लिए प्रयोग किया। 'आदिग्रन्थ' पंजाबी का पहला महान् ग्रन्थ है, पर उसकी भाषा इतनी हिन्दी-बोझिल है कि वह हिन्दी की ही एक शैली-सी लगती है। इसका विशेष कारण था। गुरु नानक सन्तों की परम्परा में हुए थे। निर्गुण सन्तों का उन पर बड़ा प्रभाव था, इससे यह असम्भव था कि उन पर सन्तों की वाणी का असर न पड़ता।

'आदिग्रन्थ' में 3,384 पद हैं और इनको 31 रागों में बाँट दिया गया है। भगवान् की भक्ति और गुरु में अचल विश्वास ही इन पदों की टेक है। अनेक बार इनके चित्रण अलंकारों और उपमाओं के योग से अत्यन्त आकर्षक बन गए हैं। 'आदिग्रन्थ' का संग्रह सिक्खों के पाँचवे गुरु अर्जुन (1563-1606) ने प्रस्तुत किया था। उसमें गुरु नानक, उनके बाद के गुरुओं–स्वयं अर्जुन और अन्य सन्तों की वाणियाँ और पद एकत्र कर लिए गए।

'दशम-ग्रन्थ' में सिक्खों के अन्तिम गुरु गोविन्दसिंह (1666-1708) और उनके दरबार के कवियों के पद संगृहीत हैं। यह संग्रह 1721-37 के बीच मनीसिंह ने तैयार किया। 'दशम-ग्रन्थ' की भाषा और छन्द हिन्दी हैं। एकमात्र चंडी-सम्बन्धी पद 'चण्डी दी वार' पंजाबी में हैं। इस ग्रन्थ में अधिकतर हिन्दू पुराणों और परम्परा की कथाएँ दी हुई हैं। 'चंडी दी वार' पंजाबी की एक प्रसिद्ध कृति है जिसमें काव्यात्मक रूप में दुर्गा की शक्ति और युद्ध-कला का वर्णन है। बिम्बों और उपमाओं की छटा उसमें देखने योग्य है।

'प्राण-संगली' में योग-सम्बन्धी कथोपकथन है जो साधारणतः गुरु नानक की रची मानी जाती है। इसी प्रकार गुरु गोविंदसिंह का लिखा भगवद्गीता का एक छंदशः अनुवाद भी 'गोविंद-गीता' के नाम से प्रसिद्ध है। 'प्रेम-अबोध' में अनेक रूपकों और कथाओं द्वारा दोहों में प्रेम का सिद्धान्त बखाना गया है। यह सब 'आदिग्रन्थ' के ही अंग हैं, जिनमें जैदेव, नामदेव, रविदास, कबीर और फरीद आदि के पद हैं।

गुरदास के लिखे कुछ 'वार' हैं, लम्बी कविताएं, जिनमें सिक्ख-धर्म के उपदेश उदाहरणों-उपमाओं सहित निरूपित हैं। 'जनम-साखी' भी धार्मिक साहित्य के ही अंग हैं। उनका सम्बन्ध गुरु नानक के जीवनचरित से है। बाला, सेवासिंह, मनीसिंह तीनों ने जनम-साखियाँ लिखीं। जनम-साखियाँ गद्य में लिखी हैं और पंजाबी गद्य के प्रारम्भिक नमूने प्रस्तुत करती हैं।

पंजाबी साहित्य के प्रधान निर्माता शुरू में मुसलमान थे। सिक्खों की भांति उन्होंने पंजाबी में ही अपने धर्मग्रन्थ लिख डाले। उन्हीं के जरिए उन्होंने मुसलमानों में प्रचार-कार्य किया। अब्द, अब्दी या आशी नाम से लिखने वाले अब्दुल्लाह ने सत्रहवीं सदी के मध्य धार्मिक विश्वासों और कर्तव्यों पर अपना 'बारा-अन्वा' लिखा। उन्नीसवीं सदी में प्रायः 8000 शेरों में 'अन्वा-बारकुल्ला' लिखा गया। बीसवीं सदी के शुरू में गुलाम हुसेन ने मुसलमानों की दयनीय हालत पर अपने 'नूरे-हिदायत' में विचार किया। पंजाबी में लिखे अनेक 'मेराज़नामा' (मुहम्मद साहब

का स्वर्ग जाना) भी मिलते हैं। इसी प्रकार धार्मिक युद्धों का वर्णन करनेवाले अनेक जंगनामे भी हैं। हामिद का अठारहवीं सदी में लिखा 'जंगनामा' विशेष लोकप्रिय है। उसमें 5620 पंक्तियाँ हैं और उसका स्त्रियों का विलाप वाला प्रसंग अत्यन्त करुण है।

यूसुफ और जुलेखा की कहानी भी पंजाबी का लोकप्रिय प्रसंग रही है। अब्दुल हकीम बहावलपुरी, गुलाम रसूल और हबीब अली ने अपने-अपने तरीके से यह कहानी रची है। हबीब अली की कहानी में तो 36,000 पंक्तियाँ हैं। सूफी कविताएँ भी पंजाबी में खासी हुईं। फरीद की कविताएँ तो 'आदिग्रन्थ' में भी संगृहीत हैं, प्रसिद्ध सूफी कवि बुल्हेशाह के 'काफी' भी बहुत प्रसिद्ध हैं। अली हैदर ने भी सूफी मत की अनेक 'सीहर्फी' लिखीं।

'लव कुश दियां पौड़ियाँ' पुरानी पंजाबी की इनी-गिनी रचनाओं में है। उसमें पिता श्रीराम के साथ लव-कुश की लड़ाई का वर्णन है। सत्रहवीं सदी के बीच जसोदानन्दन ने उसे लिखा। उसके अतिरिक्त रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत और भगवद्गीता अनेक प्रकार से पंजाबी में अनूदित हुए।

हीर-रांझा के गीत सारे पंजाब में गाए जाते हैं। हीर झंग के मुखिया की बेटी थी और रांझा दूसरे गाँव के मुखिया का बेटा। दोनों में प्रेम हो गया पर हीर की शादी उसके पिता ने किसी और से कर दी। रांझा फकीर हो गया। कहानी की लोकप्रियता ने उसे अनेक रूप दे दिए हैं। एक के अनुसार हीर अपने निषिद्ध प्रेम के कारण मार डाली गई। दूसरे के अनुसार दोनों प्रेमी निकल भागे और जीवन-भर सुख से रहे। अकबर के ज़माने से ही लगातार लम्बी-लम्बी कविताएँ इस प्रसंग में लिखी जाती रही हैं। दामोदर, मुकबिल, वारिस शाह सभी ने उसे अपनी-अपनी प्रतिभा से लिखा। वारिस शाह पंजाबी का सबसे बड़ा कवि है। उसकी शैली बड़ी तीखी है और उसके वर्णन में पंजाबी जीवन उछल पड़ता है। साहबां और मिर्जा और सोहनी और महीवाल दोनों की कथाएँ अत्यन्त करुण हैं। दोनों बड़ी लोकप्रिय हैं, जिससे उनके

अनेक रूप बन गए हैं। अनेक गीत इन कथाओं पर बने हैं और बड़े शौक से पंजाबी में गाए जाते हैं। लम्बे वारों में अनेक अन्य ऐतिहासिक और दूसरी कथाएँ भी कही गई हैं। निजाबत, अग्रासेथी, अडूरराय, हिदायत उल्लाह, ईशरदास, किशन सिंह आरिफ, मोहम्मद बूता आदि इस क्षेत्र के जाने हुए साहित्यकार हैं।

पंजाबी का आधुनिक काल बीसवीं सदी में आरम्भ होता है। इस काल की काव्य-धारा का आरम्भ वीर सिंह ने 'राना सूरतसिंह' काव्य लिखकर किया। पर शीघ्र वीर सिंह के अध्यात्म को पीछे कर पूरन सिंह ने मानवीय पार्थिव विषयों को अपनाया। 1923 और 1925 में उसकी कविताओं के संग्रह 'खुले छन्द' और 'खुले मैदान' नाम से प्रकाशित हुए। इनसे दो-तीन साल पहले किरपासागर का ऐतिहासिक काव्य 'लक्ष्मीदेवी' प्रकाशित हुआ। धनीराम ने अपनी कविताओं, 'हिमाला', 'गंगा', और 'रात' में कल्पना के क्षेत्र में ऊँची उड़ान ली, और अपने 'कोरा कादिर' में भगवान् को भिन्न-भिन्न मजहब बनाने के लिए धिक्कारा।

पंजाबी में नाटक हिन्दी-अंग्रेजी अनुवादों से शुरू हुए। नन्दा ने अपनी 'सुभद्रा' में पुरानी रूढ़ियों की अच्छी खिल्ली उड़ाई। 'पूरब ते पच्छम' में इसी प्रकार गुरबख्श सिंह ने यूरोपीय संस्कृति का मज़ाक उड़ाया। नाटकों के अतिरिक्त कुछ एकांकी भी पंजाबी में लिखे गए पर वे विशेष सफल नहीं हुए।

उपन्यासकारों में अग्रणी नानक सिंह हुए, जिन्होंने 'चिट्टा लहू' और 'गरीब दी दुनिया' लिखकर गरीब-अमीर और पूँजी और मज़दूरी के अन्तर व्यक्त किए। इसी उपन्यासकार ने कहानियाँ भी लिखीं। करीब सौ कहानियाँ नानक सिंह की आज उपलब्ध हैं। करतार सिंह की कहानियों में मनोविज्ञान की झलक खासी होती है। गुरबख्श सिंह की शैली बड़ी मंजी हुई और सुधारवादी है।

पूरण सिंह और गुरबख्श सिंह ने निबन्ध भी सुन्दर लिखे, पर इस क्षेत्र में तेजासिंह ने अपनी शैली से अधिक ख्याति अर्जित की।

वर्तमान युग के कवियों में प्रधान किरपा सागर, प्रीतमसिंह सफीर, अवतारसिंह आज़ाद, दीवानसिंह कालापानी, चननसिंह जत्थूवालिया, देवेन्द्र सत्यार्थी, बावा बलवन्त, डा. गोपालसिंह, हरिंदरसिंह रूप, ईश्वरसिंह, सुरिन्दरसिंह कोहली, सन्तोषसिंह धीर, प्यारासिंह सेहराई, तेजासिंह साबर और अहमद राही हैं। कवयित्रियों में प्रमुख अमृता प्रीतम और प्रभजोत कौर हैं। अमृता प्रीतम ने पंजाबी में अत्यन्त सुन्दर गीत और कविताएँ लिखी हैं। उनका 'अज आखां वारिसशाह नूं' का तो पंजाबी कविता क्षेत्र में साका चल गया। अमृता प्रीतम ने कहानियाँ और उपन्यास भी लिखे हैं। उनकी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' बहुत लोकप्रिय हुई।

पंजाबी उपन्यास और कहानियों में पहला विशिष्ट कदम नानकसिंह ने उठाया। गुरबख्शसिंह तो बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे ही, इस क्षेत्र में भी उनका बोल-बाला रहा। पंजाबी के प्रधान उपन्यासकार नवतेजसिंह, कुलवन्तसिंह विर्क, सुरिन्दरसिंह, सज्जाद हैदर, सन्तसिंह सेखों, करतारसिंह दुग्गल और अमृता प्रीतम हैं। करतार सिंह दुग्गल तो हिन्दी के भी जाने हुए कहानीकार हैं। जसवंतसिंह कंवल, नरिंदरपालसिंह और सुरिन्दरसिंह कोहली ने भी इस क्षेत्र में सफल प्रयत्न किए हैं।

पंजाबी नाटक-क्षेत्र को सन्तसिंह सेखों, गुरबख्सिंह, अमरीकसिंह, रोशनलाल अहूजा और बलवन्त गार्गी ने भरा-पूरा है। वैसे उस दिशा में फिरोज़दीन शर्फ, बावा बुधसिंह, बृजलाल शास्त्री, हरचरनसिंह, बावा बोहरसिंह और गुरुदयालसिंह खोसला के प्रयास भी सराहनीय हैं।

पंजाबी में दूसरे विषयों पर लिखनेवाले प्रधानतः निम्नलिखित हैं—प्रिंसपल तेजासिंह, प्रो. गंडासिंह, कपूरसिंह, खुशवन्तसिंह, बावा बुधसिंह, प्रेमसिंह होती, डा. मोहनसिंह, डा. बनारसीदास, लालसिंह, प्रो. अमरसिंह, प्रिंसपल जोधसिंह, प्रो. गंगासिंह और प्रो. साहिबसिंह। इन कृतिकारों ने विशेषतः इतिहास, सामाजिक और धार्मिक विषयों पर लिखा है।

उर्दू और हिन्दी का प्राधान्य होने से पंजाबी के लेखक धीरे-धीरे उर्दू के साहित्यकार हो गए। मंटो, राजेन्द्रसिंह बेदी, बलवन्तसिंह ने

अधिकतर उर्दू में ही लिखा। हिन्दी को भी पंजाबी लेखकों का योग मिला। हिन्दी के अनेक प्रसिद्ध लेखक पंजाबी हुए। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, गुरुदत्त आदि पंजाबी ही थे। इधर रामस्वरूप अणखी पंजाबी कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में अच्छा काम कर रहे हैं।

13. संस्कृत

संस्कृत साहित्य को साधारण तौर पर दो बड़े भागों–धार्मिक और लौकिक–में बाँटा जा सकता है। धार्मिक साहित्य में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र, धर्म-शास्त्र, दर्शन और पुराण आते हैं, लौकिक में काव्य, नाटक आदि। संस्कृत साहित्य का काल-प्रसार प्रायः तीन हजार साल रहा है और आज यद्यपि हम उसे बोलते-लिखते नहीं, देश का अधिकतर धार्मिक जीवन उससे बँधा हुआ है। हिन्दुओं के धर्म-कार्य आज भी उसी भाषा में होते हैं, विवाह, श्राद्ध आदि सभी संस्कार। संस्कृत भाषा को इसी धर्म की भाषा होने के कारण कहते भी देव-वाणी या देव-भाषा ही हैं।

1.

धार्मिक साहित्य में प्रधान वेद हैं। 'वेद' शब्द का मतलब है, ज्ञान, पवित्र ज्ञान। वेद चार हैं–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ये चारों संहिताएँ कहलाते हैं क्योंकि ये पहले के बनाए मन्त्रों के संग्रह हैं। इन चारों में सबसे अधिक महत्व ऋग्वेद का है। सामवेद में 75 सूक्त छोड़कर बाकी सभी ऋग्वेद से लिए गए हैं, यजुर्वेद का प्रायः सारा मन्त्र-भाग उसी का है और अथर्ववेद में भी ऋग्वेद के अनेक मन्त्र हैं।

ऋग्वेद दस मण्डलों और 1028 सूक्तों और 10,600 मन्त्रों में बँटा है। सूक्त मन्त्रों के समूह को कहते हैं। ऋग्वेद के ही अधिकतर मन्त्र यज्ञ में काम आने वाले यजुर्वेद में इकट्ठे कर लिए गए हैं और जो यज्ञ में गाए जाते थे, उन्हें सामवेद में एकत्र कर लिया गया है। ऋग्वेद के मंत्र जिन देवताओं की स्तुति में कहे गए हैं उनमें प्रधान वरुण, इन्द्र, सोम, सूर्य आदि हैं। उषा के प्रति भी कुछ अद्‌भुत रूप से सुन्दर मन्त्र कहे गए हैं। वेदों को 'श्रुति' भी कहते हैं, वह इसीलिए कि तब अभी लिखकर पढ़ने का चलन न था, रटकर मन्त्र याद कर लिए जाते थे। पिता या गुरु मन्त्र बोलते थे, पुत्र या शिष्य सुनकर स्मरण कर लिया करते थे।

धार्मिक वैदिक साहित्य का पिछला भाग उत्तर वैदिक कहलाता है। इसमें ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थ हैं। ये तीनों अधिकतर किसी न किसी वेद से जुड़े हुए हैं। ब्राह्मण गद्य में लिखे हैं जो या तो प्राचीन वैदिक मन्त्रों का अर्थ स्पष्ट करते हैं या यज्ञादि की विधियों पर प्रकाश डालते हैं। इनमें प्रधान ऐतरेय और शतपथ हैं। आरण्यकों का ज्ञान जंगल के एकान्त में विचारा और दिया जाता था, इससे उनका यह नाम पड़ा। इनमें प्रधान ऐतरेय आरण्यक आदि हैं।

उपनिषदों में ब्रह्म और आत्मा का विवेचन है। वे दर्शन का आरम्भ करते और जीव, जगत् आदि के स्वभाव पर विचार करते हैं। वे वैदिक ज्ञान के अन्त में आते हैं, इससे उन्हें वेदान्त भी कहते हैं। उपनिषदों की संख्या सैकड़ों में है, वैसे ग्यारह प्रधान माने जाते हैं और उनमें भी महत्व के बृहदारण्यक, छान्दोग्य, कौषीतकि, ईश, कठ, केन, मुण्डक, माण्डूक्य और प्रश्न उपनिषद् आदि हैं।

वेदांग छह हैं–शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और व्याकरण। ये वस्तुतः वेद के अंग तो नहीं हैं पर उनके सही-सही पढ़ने और समझने के साधन हैं, इससे इनको पढ़ना भी आवश्यक माना जाता था। शिक्षा, शब्दों के उच्चारण से और निरुक्त उनकी बनावट, अर्थ आदि से सम्बन्ध रखता था; छन्द मंत्रों की बनावट आदि से; ज्योतिष यज्ञादि की विधियों,

तिथियों आदि से; व्याकरण मन्त्रों की भाषा से और कल्प यज्ञों-संस्कारों आदि से सम्बन्धित थे। वेदांग अधिकतर सूत्र-शैली में लिखे गये हैं। सूत्र थोड़े से थोड़े निश्चित शब्दों में अधिक अर्थ प्रगट करते थे। एक-एक मात्रा बचा लेने में सूत्रकार पुत्र-जनन का सुख मानते थे।

बड़ी कठिन शैली थी यह, पर जब लिखना कम होता था तब याद करने में आसानी हेतु वैदिक साहित्य के निर्माण के पश्चात् इसी सूत्र-शैली का संस्कृत में विस्तार हुआ।

निरुक्त संसार के सबसे पहले कोष थे, जो आज से ढाई हज़ार साल से भी पहले लिखे गए। सबसे महान् निरुक्तकार यास्क थे। ज्योतिष का सम्बन्ध नक्षत्रों की गति और गणित से था। बाद में यूनानी और उसके ज़रिए बाबुली, ताजिकी आदि ज्योतिष भी इस वेदांग में जोड़ लिए गए। संस्कृत व्याकरण जितना वैज्ञानिक है, उतना संसार की किसी भाषा का नहीं। उस क्षेत्र की सबसे महान् रचना पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' है। उस पर कात्यायन ने अपना वार्तिक लिखा और पतंजलि ने अपना महाभाष्य जिससे सूत्रों का अर्थ खुला और संस्कृत व्याकरण का वर्तमान रूप सामने आया। बाद में भी व्याकरण बनाने की परंपरा चलती रही, जो सभी पाणिनी के आधार पर ही थे।

सूत्रों का अपना एक साहित्य ही बन गया है। ये तीन प्रकार के हैं—श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र और धर्म सूत्र। श्रौत सूत्रों में यज्ञों का विधान है; गृह्य सूत्रों में गृहस्थों के कर्तव्यों और संस्कारों का और धर्म सूत्रों में वर्णाश्रम धर्म, कानून इत्यादि का। इनके आधार पर स्मृतियाँ बनीं जिनमें मनु और याज्ञवल्क्य प्रधान हैं।

प्रकट है कि यद्यपि इन वेदांगों का आरम्भ वेदाध्ययन की सहायता के लिए हुआ तथापि ये स्वतन्त्र रूप से नए क्षेत्रों में विकसित होते गए और अन्त में सर्वथा वैज्ञानिक और लौकिक हो गए। बाद में तो अर्थशास्त्र (कौटिलीय) , कामसूत्र (वात्स्यायन) आदि भी बने, जिनका सम्बन्ध शासन और सम्पत्ति तथा काम-विज्ञान से था।

भारतीय दर्शन का आरम्भ तो वेदों में ही हो गया था, पर उसका

विशेष चिन्तन उपनिषदों में हुआ और वह पका व्यवस्थित दर्शनों के सिद्धान्तों में। अनीश्वरवादी चारवाकों, जैन और बौद्धों के दर्शनों के अतिरिक्त हिन्दुओं के छह दर्शन हैं, जो प्रायः सभी प्रारम्भ में, बीज रूप में, अनीश्वरवादी हैं। ये हैं– जैमिनि की पूर्वमीमांसा, बादरायण की उत्तर मीमांसा, कपिल का सांख्य, पतंजलि का योग, कणाद का वैशेषिक और गौतम का न्यायसूत्र।

इस दर्शन-साहित्य में ही श्रीमद्भगवद्गीता की भी गणना है। समन्वित दर्शन का यह अपूर्व ग्रन्थ है और परिणाम की भावना छोड़कर कर्म करने की कर्मयोग की अनूठी प्रेरणा देता है। इसी से इस देश की जनता का आज हज़ारों वर्ष से यह अत्यन्त प्रिय ग्रन्थ रहा है।

संस्कृत के धार्मिक साहित्य का अन्तिम अंग पुराण हैं। इनमें देश का प्राचीन इतिहास भी समाहित है। इतिहास-पुराणों का उल्लेख अथर्ववेद तक में है। पुराण–यानी पुराना–नाम से भी प्रकट है कि यह साहित्य पुराना होगा। पर जिस रूप में आज हम पुराणों को पाते हैं, वे बाद में लिखे गए, शायद आज से कोई डेढ़ हज़ार साल पहले, गुप्त-राजाओं के काल में। इससे यह भी प्रकट है कि उनसे पहले कोई मूल पुराण भी था जिसका सम्पादक वेदों के सम्पादक (संहिताकार) और महाभारत के रचयिता व्यास को माना जाता है।

पुराणों में सृष्टि, प्रलयान्तर सृष्टि, ऋषियों और राजाओं की वंश-तालिकाओं का वर्णन है। हमारे जीवन की अधिकतर परम्पराएँ उन्हीं में मिलती हैं। आज का हमारा हिन्दू-जीवन अधिकतर उन्हीं पर अवलंबित है। हम आज वेदों का नहीं, पुराणों का जीवन ही जीते हैं। उन्हीं के देवी-देवताओं का, उन्हीं के विश्वासों-आदर्शों का। पुराण अट्ठारह माने जाते हैं। इनमें प्रधान ब्रह्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, श्रीमद्भागवत पुराण, अग्नि, विष्णु, वायु, मार्कण्डेय और भविष्य आदि हैं। श्रीमद्भागवत पुराण का बहुत आदर है। इसमें श्रीकृष्ण की कथा है। उसकी भाषा बहुत प्रांजल और अर्थगर्भित है। इसीलिए कहा जाता है कि विद्वानों की परीक्षा भागवत में ही होती है–'विद्यावतां भागवते परीक्षा'।

2.

लौकिक साहित्य के प्रधानतः दो भाग हैं—काव्य और नाटक। वस्तुतः नाटक भी काव्य के अन्तर्गत ही माने जाते हैं। ऐसे ही अच्छे गद्य को भी काव्य मानते हैं। जो रसभरा वाक्य है वह काव्य ही है। इसी दृष्टि से बाण और दण्डी प्रधानतः गद्य लिखनेवाले होकर भी कवि माने गए हैं।

हम यहाँ लौकिक काव्य-साहित्य के भी दो भाग करेंगे—प्राचीन महाकाव्य और पिछले युगों के काव्य-नाटक। प्राचीन महाकाव्यों में प्रधान रामायण और महाभारत हैं। ये दोनों ईसवी सदी के आरम्भ के पहले ही बन चुके थे। रामायण में राम-सीता की कथा है, रावण-वध की, और महाभारत में कौरव-पाण्डवों के युद्ध की। महाभारत का बीज-भाग तो निश्चय अट्ठारह दिनों की युद्ध की वार्ता उपस्थित करता है पर वास्तव में वह आज एक प्रकार का पुराण ही बन गया है, जिसमें हज़ारों प्राचीन कथाएँ दी हुई हैं। जब यह केवल युद्ध-भाग मात्र था तब इसका नाम 'जय' था, फिर बढकर यह 'भारत' और अन्त में 'महाभारत' कहलाया। अब इसमें एक लाख श्लोक हैं, इससे इसका दूसरा नाम 'शतसाहस्री-संहिता' भी है। इसी महाभारत में भारतीय दर्शन का अपूर्व ग्रन्थ 'भगवद्गीता' है। रामायण और महाभारत की कहानियाँ पुराणों की ही भाँति हमारे कवियों के प्रबन्ध-काव्यों और नाटकों में प्रस्तुत घटनाओं के लिए आधार सिद्ध हुई हैं। कालिदास ने अपना 'रघुवंश' और 'शाकुन्तल' महाभारत के आधार पर ही लिखे। रामायण वाल्मीकि और महाभारत व्यास की रचना मानी जाती है।

वाल्मीकि और व्यास के बाद का काव्य-काल ईसा की प्रारम्भिक सदियों से शुरू होता है। उस काल के साहित्य-आकाश में सबसे देदीप्यमान नक्षत्र ब्राह्मणी सुवर्णाक्षी का पुत्र अश्वघोष है। अश्वघोष दार्शनिक, भिक्षु और कवि था। उसने बुद्ध की कथा के प्रचार के लिए 'बुद्धचरित' और 'सौंदरनन्द' महाकाव्य लिखे। 'बुद्धचरित' में बुद्ध की

कथा है, और 'सौंदरनन्द' में बुद्ध के सौतले भाई नन्द और उसकी पत्नी सुन्दरी की कथा। अश्वघोष ने कालिदास को इतना प्रभावित किया कि उस महाकवि ने भी 'बुद्धचरित' के कई श्लोक अपने काव्यों 'रघुवंश' और 'कुमारसम्भव' में दुहराए। अश्वघोष कुषाणराज कनिष्क के समय ईसा की पहली सदी में हुआ। उसकी कृतियाँ इतनी लोकप्रिय थीं कि वे मध्य एशिया तक की हिन्दू और बौद्ध बस्तियों में पढ़ी जाती थीं। उसके यहाँ कुछ नाटकों के भाग भी मिले हैं, जिनसे प्रकट होता है कि वह नाटककार भी था।

अश्वघोष के प्रायः दो सौ साल बाद संस्कृत का पहला प्रसिद्ध नाटककार भास हुआ, जिसके प्रधान नाटक 'स्वप्नवासवदत्ता', 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण', 'चारुदत्त' आदि हैं। इनमें 'चारुदत्त' को बदल-बढ़ाकर बाद में शूद्रक ने अपना हास्य-नाटक 'मृच्छकटिक' लिखा जिसमें उसने ब्राह्मण को चोर और वेश्या को नायिका बनाया।

इसी बीच बौद्ध ग्रन्थ 'अवदान शतक' और आर्यसूर की 'जातकमाला' संस्कृत में लिखे गए। यही काल संस्कृत में शिला और स्तंभों पर लिखी सुन्दर राजकीय प्रशस्तियों और अभिलेखों का है। सुन्दरतम प्रशस्ति-कवि हरिषेण और वत्समही हुए। हरिषेण कालिदास से कुछ पहले हुआ और वत्समही कुछ बाद।

पाँचवीं सदी ईसवी के कवि कालिदास की तुलना अंग्रेजी कवि और नाटककार शेक्सपियर से की जाती है पर कालिदास उससे कहीं महान् साहित्यकार थे। उसने चार काव्य लिखे, तीन नाटक। 'रघुवंश' और 'कुमारसम्भव' उसके दो महाकाव्य हैं, जिनमें क्रमशः सूर्यवंश और शिव-पार्वती की कथा कही गई है और जिनमें क्रमशः उन्नीस और सत्रह सर्ग हैं। 'कुमारसंभव' में वस्तुतः शिव-पुत्र कार्त्तिकेय की जन्म-कथा वर्णित है। इसीलिए उसका नाम 'कुमारसंभवम्' है। 'मेघदूत' अद्भुत मधुर खण्ड-काव्य है, जिसने देशी-विदेशी अनेक कवियों को प्रभावित किया है। 'ऋतुसंहार' कवि का छोटा प्रारम्भिक काव्य है, जिसमें छहों ऋतुओं का वर्णन है। कालिदास की उपमाएँ तो प्रसिद्ध हैं ही, उसके

काव्यों का-सा रस अन्यत्र कहीं नही। कालिदास के नाटक तीन हैं– 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय' और 'अभिज्ञान शाकुन्तल'। 'शाकुन्तल' का चमत्कार संसार-भर के आलोचकों ने माना है।

कालिदास की ही भाँति विख्यात महाकाव्य लिखने वाले कवि भारवि, माघ और श्रीहर्ष हैं। भारवि ने 'किरातार्जुनीय', माघ ने 'शिशुपाल वध' और श्रीहर्ष ने 'नैषधचरित' लिखा। भारवि छठी सदी ईसवी के अन्त में हुए और उनका नाटक 'उत्तररामचरित' बहुत प्रसिद्ध हुआ। माघ ने 700 ई. के लगभग महाभारत के आधार पर कृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध की कथा अपने महाकाव्य में लिखी। बारहवीं सदी में कन्नौज के राजा जयचन्द्र के दरबार में श्रीहर्ष ने अपना नल-दमयन्ती सम्बन्धी महाकाव्य 'नैषधचरित' रचा। दंडी भी प्रसिद्ध कवि हुआ। वस्तुतः संस्कृत के चार सर्वश्रेष्ठ काव्यकार हैं कालिदास, भारवि, दंडी और माघ। उनमें चारों को चार विशेषताओं के कारण प्रसिद्धि मिली। कहा गया है–'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्। दंडिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।' उपमा के लिए कालिदास, अर्थगौरव के लिए भारवि, पद-लालित्य के लिए दंडी प्रसिद्ध हैं पर माघ में ये तीनों गुण हैं। इस तरह माघ एक श्रेष्ठ कवि है। वे कुछ और ग्रन्थ लिखते तो कालिदास भी फीके पड़ जाते। संस्कृत काव्य की मधुर परम्परा इन कवियों के आगे-पीछे और बीच-बीच में भी चलती रही। बंगाल के कवि जयदेव ने बारहवीं सदी में अपना ललित गेय वैष्णव-काव्य 'गीतगोविन्द' लिखा। परम्परा के पिछले काल में सबसे पण्डित और महान् कवि, शाहजहाँ का समकालीन, पण्डितराज जगन्नाथ हुआ जिसकी रचना 'गंगालहरी' अमर कृति है।

नाटक की परम्परा में भास और कालिदास के बाद राजा हर्षवर्धन का नाम आता है। हर्ष, बाण, मयूर, मातंग, दिवाकर आदि कवियों का संरक्षक तो था ही, वह स्वयं भी कुशल नाटककार था। उसने 'नागानन्द', 'प्रियदर्शिका,' और 'रत्नावली' नाम के तीन नाटक लिखे।

कालिदास के बाद संस्कृत साहित्य का सबसे महान् नाटककार

भवभूति हुआ। उसने तीन नाटक लिखे–'मालती–माधव', 'महावीर-चरित' और 'उत्तररामचरित'। 'मालती-माधव' में माधव का मालती के प्रति अनुराग प्रदर्शित है, 'महावीरचरित' में रामायण की कथा है और 'उत्तररामचरित' में सीता-परित्याग का अत्यन्त शालीन और करुण चित्रण है।

राजनीतिक नाटक लिखने में विशाखदत्त बड़ा सिद्धहस्त हुआ। उसका 'मुद्राराक्षस' संसार के राजनीतिक नाटकों में बेजोड़ है। उस नाटक में नन्दों के विध्वंसक चन्द्रगुप्त मौर्य के मन्त्री चाणक्य और नन्दराज के मन्त्री राक्षस का परस्पर कूटनीतिक संघर्ष वर्णित है। उसकी दूसरी रचना 'देवी चन्द्रगुप्तम्' भी राजनैतिक ही है, पर यह अपूर्ण ही मिली है। इसमें गुप्त नरेश चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने कुमारावस्था में अपने भाई रामगुप्त द्वारा उसकी हारी हुई पत्नी ध्रुवदेवी के वेश में शक राजा को मारकर देवी का उद्धार किया है।

भट्टनारायण का 'वेणीसंहार' महाभारत की उस घटना पर अवलंबित है, जिसमें भीम दुःशासन को मारकर द्रौपदी के अपमान का बदला लेता है। सातवीं सदी में कांची के पल्लवराज महेन्द्रविक्रम का 'मत्तविलास' हास्यरस से भरा सुन्दर प्रहसन है।

संस्कृत गद्य का विस्तार भी कुछ कम नहीं परन्तु न तो वह काव्य की भाँति बहुल ही है, न उतना शालीन ही। वैसे तो ब्राह्मण-ग्रन्थों में ही उस गद्य का आरम्भ हो गया था, पर उसका विपुल विकास प्रायः हज़ार वर्ष बाद हुआ। पहला सुन्दर शालीन संस्कृत गद्य का नमूना शकराज रुद्रदामा के गिरनार के शिलालेख में मिलता है। पर गद्य-काव्य की रचना सातवीं सदी के आरम्भ में शुरू हुई। बाणभट्ट ने अपनी 'कादम्बरी' उसी शैली में नितान्त कल्पना से लिखी। उसे संस्कृत का पहला उपन्यास माना जाता है। वस्तुतः बाणभट्ट 'कादम्बरी' को पूर्ण किए बिना ही मर गया; उसे पूर्ण उसके द्वितीय पुत्र ने किया। उसका 'हर्षचरित' भी उसी परम्परा का है। दोनों वह अपूर्ण छोड़ गया। दण्डी ने अपना 'दशकुमारचरित' ललित गद्य में लिखा। सुबन्ध ने अपनी

'वासवदत्ता' लिखकर 'कादम्बरी' की ही भाँति एक उपन्यास का सूत्रपात किया।

संस्कृत का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसका संक्षेपतम सिंहावलोकन भी पर्याप्त विस्तार की अपेक्षा करेगा। यहाँ स्वल्प में उसकी ओर संकेत मात्र किया गया है, वरना उसके चम्पू (पद्य-गद्य सम्मिलित), स्तोत्र, ऐतिहासिक काव्यों और अनन्त खण्ड-काव्यों का कोई अन्त नहीं। फिर उसके विविध वैज्ञानिक विषयों, नीतिपरक रचनाओं, पंचतंत्रादि कथाओं की परिधि असाधारण रूप से बड़ी है।

वर्तमान काल में भी संस्कृत उपेक्षित नहीं है। उसमें डा. रामकरण शर्मा (पूर्व कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) ने कई ग्रन्थ लिखे हैं। वे अभी भी सक्रिय हैं। उनका ग्रन्थ 'ज्ञान भैषज्य मंजरी' बहुत प्रसिद्ध है। डा. मुरलीधर पांडेय (पूर्व प्राचार्य, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं कुलपति संस्कृत विद्यापीठ) ने शंकर-पूर्व अद्वैत पर एक उत्कृष्ट कृति दी है। प्रो. राजेन्द्र मिश्र (वर्तमान कुलपति, संस्कृत वि. वि., वाराणसी) ने भी संस्कृत गद्य-पद्य दोनों में लिखा है।

प्रो. जगन्नाथ पाठक इलाहाबाद में संस्कृत के अच्छे काव्यकार हैं। यह कहना गलत है कि संस्कृत एक जीवन्त भाषा नहीं है। अब भारत सरकार भी संस्कृत के प्रसार का उद्योग कर रही है।

•••

स्वदेश-परिचय माला

भारत एक महान् देश है, जिसके संबंध में परिचय देने वाली यह पुस्तकमाला भारत के सभी पक्षों का पूरा विवरण देती है। प्रत्येक पृष्ठ पर दो रंग में कलापूर्ण चित्र, सुगम भाषा और प्रामाणिक तथ्य। इस पुस्तकमाला के लेखक हैं, प्रसिद्ध साहित्यकार, इतिहास और कला के मर्मज्ञ डॉ. भगवतशरण उपाध्याय।

भारत की कहानी
भारत की संस्कृति की कहानी
भारत के नगरों की कहानी
भारत के भवनों की कहानी
भारत की नदियों की कहानी
भारत की चित्रकला की कहानी
भारत की मूर्तिकला की कहानी
भारत के साहित्यों की कहानी
भारतीय संगीत की कहानी
भारत के पड़ोसी देश
विदेशों में भारतीय संस्कृति

प्रत्येक का मूल्य : रु. 35/-

ISBN 81-7028-498-8
9 788170 284987
रु. 35/-

राजपाल